www.faithbook.in

Faithbook®
ACTIVITIES BEYOND BOOK

22th MAY 2022
Issue 20

BOOK 032

॥ वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥
॥ पूज्याचार्य श्री प्रेम-भुवनभानु-जयघोष-राजेन्द्र-जयसुंदरसूरि सद्गुरुभ्यो नमः॥

प्रेरणा : पूज्य मुनिराज श्री युगंधर विजयजी म.सा. के शिष्य
पूज्य मुनिराज श्री शंत्रुजय विजयजी म.सा. के शिष्य
पूज्य मुनि श्री धनंजय विजयजी म.सा.

संपादक : नरेंद्र गांधी, संकेत गांधी

Team Faithbook
शुभ शाह, विकास शाह, केविन मेहता, विराज गांधी, नमन शाह

प्रकाशक : शौर्य शांति ट्रस्ट
C/O विपुलभाई झवेरी
VEER JEWELLERS, Room No. 10/11/12, 2nd Floor, Saraf Primeses Bldg., Khau Gully Corner, 15/19 1st Agyari Lane, Zaveri Bazar, Mumbai – 400003 (Time : 2pm to 7pm)
Mobile – 9820393519

संकेत गांधी – 76201 60095

Faithbook : 81810 36036 contact@faithbook.in

ज्ञानवैभव में अभिवृद्धि

सादर प्रणाम,

आलीशान मर्सिडीज को देखने के बाद जैसे बैलगाड़ी का आकर्षण खतम हो जाता है, ठीक वैसे ही परमपिता परमात्मा के वंदनीय ज्ञानवैभव के प्रति श्रद्धा उजागर होते ही भव्यात्माओं को सांसारिक सुखों के प्रति अरुचि आने लगती है! प्रभु वीर का ज्ञानवैभव देखने के बाद भी प्रभुवीर के पीछे कोई पागल ना बन जाए तो यह समझना जरूरी है कि हमने अभी तक प्रभुवीर को पहचाना ही नहीं है!!

Faithbook अंतर्गत विविध विषयों पर महात्माओं द्वारा लिखित लेख हमें हमारे प्रभु महावीर का और उनके द्वारा स्थापित इस महान जिनशासन का परिचय हमें करवाते हैं। यह knowledge book सभी पाठकों के ज्ञानवैभव में अभिवृद्धि करें, यही शुभाभिलाशा!

– नरेंद्र गांधी, संकेत गांधी

INDEX

खाद्य सामग्री के साथ जुड़े जैन शब्द से सावधान 01
पू. ग. आ. श्री राजेंद्र सूरीश्वरजी म.सा.

कंदमूल अभक्ष्य क्यों है? 04
पू. आ. श्री अभयशेखर सूरिजी म.सा.

Everything is Online, We are Offline 14.0 09
पू. मु. श्री निर्मोहसुंदर विजयजी म.सा.

मोक्षद्वार का उद्‌घाटन 13
प्रियम्

प्रभु का पैर, पुण्य का ढेर 19
पू. मु. श्री धनंजय विजयजी म.सा.

'नमो तित्थस्स' 23
पू. मु. श्री तीर्थबोधि विजयजी म.सा.

अतिथि देवो भव 26
पू. मु. श्री कृपाशेखर विजयजी म.सा.

Temper : A Terror – 18 28
पू. मु. श्री शीलगुण विजयजी म.सा.

FaithbookOnline

You can Read our Faithbook Knowledge Book in English & Hindi on our website's blog Visit : www.faithbook.in

खाद्य सामग्री के साथ जुड़े जैन शब्द से सावधान

पूज्य गच्छाधिपति आचार्य श्री राजेंद्र सूरीश्वरजी म.सा.

रोगों का घर : रेफ्रिजरेटर

आजकल रेफ्रिजरेटर फैशन और इज्जत का साधन बन गया है। परन्तु वास्तव में तो यह रोगों का ही घर है। गुजराती साप्ताहिक 'अभियान' में डॉ. श्याम वैद ने इस विषय में विस्तृत प्रकाश डाला है, जो यहाँ संक्षिप्त में साभार उद्धृत है।

फ्रीज आप समझ रहे हैं वफादार या आहार रक्षक नहीं है। किसी भी पदार्थ या फल के रसायन में परिवर्तन होता रहता है, उसे ठंडा वातावरण रोकता है। ताजे फल या साग भाजी भी श्वास लेते हैं। इन श्वास-उच्छवास के कारण फल अथवा साग-भाजी से शक्कर और प्राणवायु कार्बन डायोक्साइड में परिवर्तित होती है। इसके अलावा पानी और गर्मी भी निकलती है। इस प्रकार कि क्रिया घटित होने से फल आदि जीवन्त वस्तु पक्व होने लगती है इस प्रक्रिया को रेफ्रिजरेशन द्वारा भी रोका या मन्द नहीं किया जा सकता है यदि अत्यधिक रेफ्रिजरेशन किया जाये तो पदार्थ या फल की 'फ्लेवर" नष्ट हो जाती है। उसकी प्राकृतिक महक खत्म हो जाती हैं। फ्रीज में लम्बे समय तक रखे गए फल बाहर से ताजे दिखाई देते है। परन्तु जिन बेक्टेरीया (जन्तुओं) को फल प्रिय है, वे फ्रिज के ठंडे वातावरण में भी अच्छी तरह रह सकते है। खेती करने वाले काश्तकार जानते ही हैं कि अधिक ठंडी या बर्फ गिरने पर चना या गेहूँ की फसल बराबर नहीं आती है।

केला, मटर, ककड़ी, टमाटर आदि फ्रीज में रखे जाये तो उनके रंग में परिवर्तन आ जाता हैं। कुछ फल स्वभावतः ठंडे होने से उनमें माइक्रोब नामक कीटाणु हो जाते हैं। फ्रीज में रखे गये फलादि हमेशा निर्दोष रहेंगे, ऐसा नहीं मान लेना चाहिए। फ्रीज कोई ऐसा साधन नहीं है, जो आपको उसमें रखी सभी वस्तुओं की सलामती की गारंटी दे सके। कितने ही लोग, टॉमेटो केचअप अथवा उसकी बोतलें अथवा टोमेटो सुप के खुल्ले डिब्बे फ्रीज में रखते हैं। वे समझते हैं कि फ्रीज में सुरक्षित है। परन्तु दो दिन पश्चात उसमें जन्तु हो जाते हैं | इसीलिए अधिकतर घरों में फ्रीज आने के बाद सर्दी, खांसी और अंतड़ियों की बीमारी बढ़ने

लगती है । स्वास्थ्य के लिए फ्रीज में रखी वस्तुएँ हानिकारक और खतरनाक हैं । उपरी तौर पर कोई चीज भले ताजी दिखे, पर अन्दर से वे रोगवर्धक जन्तुओं के भंडार के समान बन जाती है ।

ब्रिटेन के वैज्ञानिक स्टिवन सोन्सीनो की बात फ्रीज रखने वालों को स्वर्णाक्षरों में अंकित कर लेना चाहिए : 'आप समझते हैं कि फ्रीज में रखी गई वस्तुएँ दिखने में, उसकी गंध में अथवा स्वाद में बिगड़ती नहीं है। परन्तु यह भ्रम है। दो-तीन दिन तक रखी गई वस्तुएँ दिखने में बिगड़ी न हो अथवा दुर्गंध न आती हो अथवा स्वाद न बिगड़ा हो, तो भी उन वस्तुओं में बड़ी मात्रा में हानिकारक जन्तु प्रवेश कर गये होते हैं।'

आधुनिक प्रकार से तैयार की गई भोजन सामग्री, पुलाव या अन्य वस्तु अनेक घण्टों तक फ्रीज में रखने के बाद खाने-खिलाने से आरोग्य को नुकसान पहुँचाती हैं। नवीन रोग उद्भव होते हैं।

बाजार में बिकने वाले खाद्य - पदार्थ

आजकल सभी बड़े नगरों में गली-गली और चौराहे-चौराहे पर चाट की दुकानें दिखती है, जिसमें लोग खुशी-खुशी सड़ा हुआ, बासी चाट, पांऊभाजी, कचोरी, समोसा खाकर नए-नए रोगों को निमंत्रण देते हैं।

ठेलागाडी या हाथलारी वाले के आइटम टेस्टफूल लगते हैं जिसे बड़े घर के लोग भी गंदी गटरों के पास खड़े-खड़े खाते हैं। इन हल्के पदार्थों की अनिष्टता के परिणाम आए-दिन समाचार पत्र में प्रकाशित होते हैं। तथापि घर के वृद्ध सहित परिवार के सभी सभ्य छुट्टी के दिन या रविवार को बाजार में सेन्डवीच, चाट, पानी-पुरी, कचोरी, समोसा, भेल, दही-वड़ा, पाऊंभाजी, आमलेट खाते दिखाई देते हैं। आज से 30-40 वर्ष पूर्व बाजार में खाना शर्म की बात थी। समाज का भय रहता कि "कोई देख तो नहीं रहा है ?" तब बच्चों को भी चने-चिरोंजी, सेव-ममरा, चिवड़ा-चककी खिलाई जाती थी, आज अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा (?) के लिए बच्चों को चर्बी मिश्रित, दांतों को बिगाड़ने वाली चॉकलेट, अंडे मिश्रित बिस्कीट, गोली दी जाती है।

बच्चों के हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क, किडनी, लीवर जैसे अंगों के लिए प्रोटीन युक्त मूँगफली-चने की अति आवश्यकता रहती है। इनसे बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास होता है। बम्बई में फेरीवाले कीट लगे हुए डिब्बे में आलू उबालते है, जिसमें बने पेटिस, पाऊंभाजी को लोग गंदी जगह खड़े होकर खाते हैं। वही आजु-बाजु पड़े उच्छिष्ट से तथा एक ही बाल्टी में धोए गए चम्मच-प्लेट में रोगीष्ट जंतुओं का चेप लगता हैं। दुर्गंध-प्रदूषण युक्त हवा, बासी पदार्थ और तीखे मसाले-चटनी से एसीडीटी, पेट में जलन होती हैं।

फिर दवाई भी कारगर सिद्ध नहीं होती है। अतः बाजारु या बाजार की चीजों का सम्पूर्ण त्याग आरोग्य के लिए आवश्यक है। अपनी रक्षा के लिए जीभ पर संयम-अंकुश जरूरी है।

खाद्य सामग्री के साथ जुड़े जैन शब्द से सावधान :

आजकल कुछ धंधादारी वर्ग ने खाने की अभक्ष्य वस्तुओं के साथ जैन शब्द जोड़ देते हैं, जिससे धर्मी आत्माएँ भ्रमित हो। अभक्ष्य वस्तुओं को जैन नाम दे देने से वह भक्ष्य नहीं हो जाती। जैसे कि -

जैन पाऊंभाजी: कालव्यतीत हो जाने वाला बाजार का मैदा उपयोग में लिया जाता हैं। इतना ही नहीं, अपितु सभी कुछ बासी होने से असंख्य त्रस जीव उत्पन्न होते है। इन्हें खाने से असंख्य त्रस जीवों के संहार का महादोष लगता है। आरोग्य की हानी करता है।

जैन आइसक्रीम : यह जिलेटीन, केक और बरफ से बनती है। जो अभक्ष्य है। मंदाग्नि रोगकारक है।

जैन कचोरी, समोसा, खमण : इसमें भी बासी मैदा, खराब हल्का तेल, खमण में रात बासी और कच्ची छाछ रहती है। फाल्गुन सुदी 14 से आठ माह तक हरे धने का प्रयोग भी होता है, जो निषेध है। अतः सावधान रहना चाहिए।

आजकल फ्लोर मिल पर तैयार पीसा हुआ आटा मिलता है। यह मिल के कोल्ड स्टोरेज में भरे महीनों-वर्षों पुराने गेहूँ, मक्की, चना आदि भरा रहता है। जो सड़ भी जाता है और उनके थैलों में असंख्य धनेरिया, ईल आदि जीवात हो जाती है। जो कि चक्की में अनाज के साथ ही पिस जाती है। इन्हीं थैलों में मैदा, रवा, बेसन भर दिया जाता है, जिसमें समय बितने पर अनेक जीव-जन्तु पैदा हो जाते हैं। और काल व्यतीत हो जाने के कारण अभक्ष्य भी हो जाता है। इसी आटे, मैदे की बिस्कीट, पाउं में उपयोग लिया जाता है। इस प्रकार निर्मित वस्तुओं के दोष की सूक्ष्मता से देखे तो जैन शब्द लगाना शोभा नहीं देता। केवल पैसा कमाने का तरीका है। प्रत्येक जैन सावधान बने।

जहाँ यतना पूर्वक अनाज निरीक्षण किया गया हो, अन्न सड़ा हुआ न हो यह देखकर पीसा गया हो, उस आटे का काल, ऋतु के अनुसार पूर्ण न हुआ हो, तो उसकी बनायी शुद्ध वस्तु भक्ष्य कहलाती है। कोई भी चीज बनाने से पूर्व आहारशुद्धि का, गुरुगम द्वारा 22 अभक्ष्य का ज्ञान आवश्यक है।

बुक स्टॉलों पर बिकने वाली विविध व्यंजन आदि बनाने की विधियों की पुस्तकों में जैन व्यंजन लिखा होता हैं। परन्तु इनके लेखकों को बावीस अभक्ष्य का सही ज्ञान न होने से अभक्ष्य वस्तुओं को भी जैन शब्द के साथ जोड़ देते हैं। जो सरासर गलत हैं। इस पुस्तक के अन्त में अभक्ष्य वस्तुओं का चार्ट दिया गया है। जिसे समझकर अपनी आत्मा और आरोग्य की रक्षा करना चाहिए। विवाह, पार्टी, धार्मिक प्रसंगों में भी भक्ष्याभक्ष्य का पूरा ख्याल रखना चाहिए। आजकल के रसोइयों को-केटरसो को भी भक्ष्य-अभक्ष्य का पता नहीं होता है। अतः बहुत सावधानी रखकर इस पुस्तक के ज्ञान का अधिकाधिक प्रचार करना चाहिए। गुरु भगवंत से जानकारी प्राप्त करें।

कंदमूल अभक्ष्य क्यों है?

पूज्य आचार्य श्री अभयशेखर सूरिजी म.सा.

प्रश्न :

महाराज साहब! कंदमूल अभक्ष्य क्यों है?

उत्तर :

जमीनकंद के भक्षण से आत्मा को दुर्गतिगमन आदि नुकसान होता है। ऐसा भगवान ने अपने केवलज्ञान में देखा है, और इसलिए भगवान ने उसका निषेध किया है। इसलिए कंदमूल अभक्ष्य है।

हमारी किसी भी चीज के स्वीकार या त्याग में मुख्य हेतु प्रभु का वचन ही होता है। हमारे जो भी कर्तव्य हैं वे हमारे कर्तव्य इसलिए हैं क्योंकि प्रभु ने हमें ऐसा करने को कहा है। इसी प्रकार हमारे लिए जो त्याज्य हैं, वे त्याज्य इसलिए हैं क्योंकि प्रभु ने उसका त्याग करने को कहा है।

रोगी को फलाना दवाई फलाना तरीके से लेनी है, क्यों? क्योंकि डॉक्टर ने वह दवा उसी तरह से लेने को कहा है। रोगी को कुछ चीजें नहीं खानी होती, छोड़ देनी है, क्यों? क्योंकि डॉक्टर ने मना किया है। बस इसी तरह से उपरोक्त बात समझनी है।

लेकिन हाँ, रोगी की यदि कारण समझने की भूमिका हो, तो डॉक्टर उसे यह समझा सकता है कि यह दवाई इस प्रकार से क्यों लेनी है? यह चीज क्यों नहीं खानी है, इत्यादि। इसी प्रकार से हमारी योग्य भूमिका हो, तो ही प्रभु के किए गए विधान या निषेध में उसके कारण को जानने की

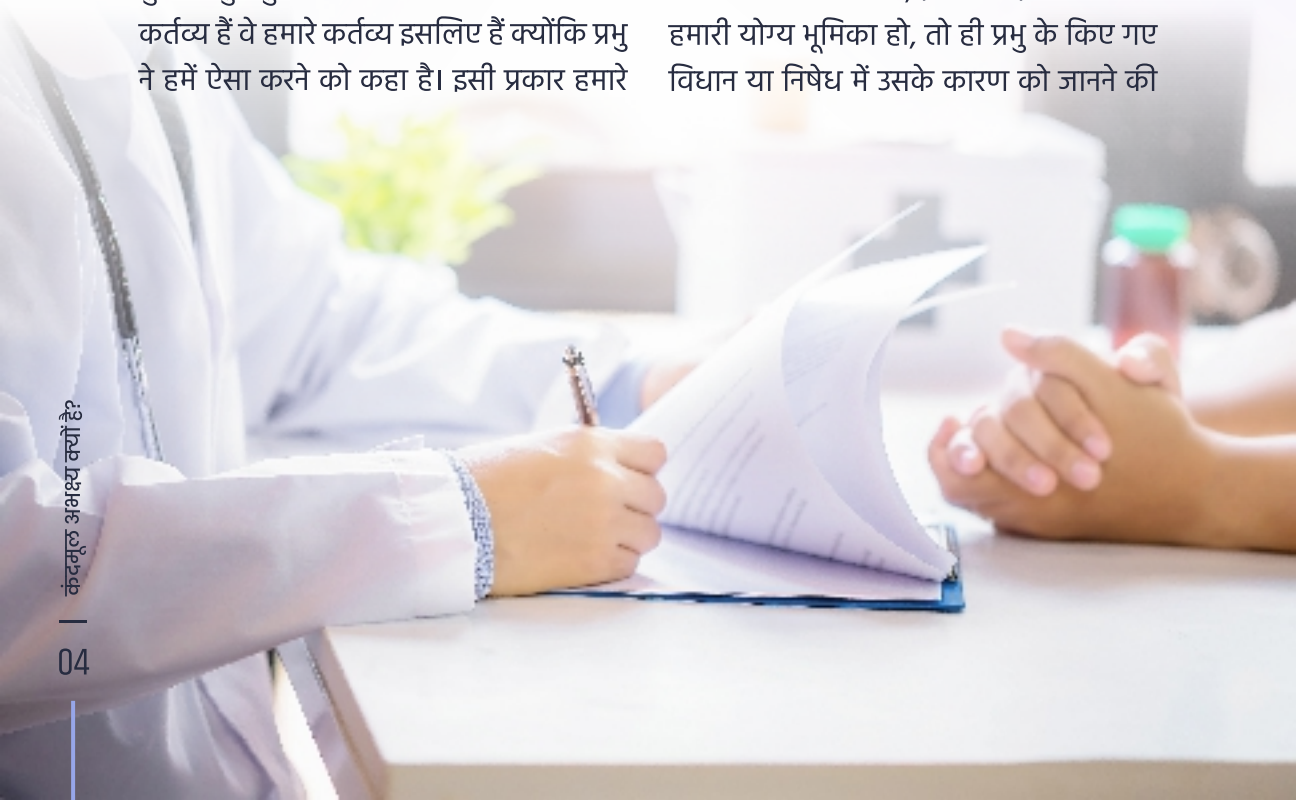

इच्छा कर सकते हैं। अन्यथा हमें आज्ञाग्राह्य बन-कर 'प्रभु की आज्ञा है, इसीलिए मेरे लिए वह ग्राह्य है' ऐसा स्वीकार करना चाहिए, यही हमारे हित में है।

हाँ! यदि हमारे कारण को समझने की भूमिका हो, तो उस कारण को जानने की जिज्ञासा करनी ही चाहिए, और योग्य गीतार्थ गुरु भगवंत से उस जिज्ञासा का समाधान भी प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकार कारण पूर्वक उन चीजों का ग्रहण निश्चित होने से वे चीजें हमारे लिए 'हेतुग्राह्य' बन जाती हैं। कारणपूर्वक स्वीकार करने से हमारी श्रद्धा अधिक बढ़ जाती है, इसलिए यदि ऐसी भूमिका हो तो उसका कारण अवश्य जानना चाहिए।

प्रश्न :

यह भूमिका क्या होती है?

उत्तर :

मूल में तो हम सभी की आत्मा में केवलज्ञान रूपी सूर्य विद्यमान है। पर ज्ञानावरणीय कर्म रूपी गाढ़ बादलों से इस सूर्य का प्रकाश (=बोध, ज्ञान) आवृत हो गया है। बादल कुछ कमजोर हो जाये, छंट जाए तो सूर्य प्रकाश थोड़ा-थोड़ा फैल जाता है। उसी प्रकार से ज्ञानावरण कर्म थोड़ा भी कम-जोर पड़ जाए तो, उतने प्रमाण में जीव को बोधि होने की भूमिका प्राप्त हो जाती है। ज्ञानावरण कर्म के ऐसे कमजोर होने को शास्त्र की भाषा में ज्ञाना-वरणीय कर्म का क्षयोपशम कहते हैं। कारण को समझने की भूमिका के लिए ऐसा क्षयोपशम होना जरूरी होता है। और साथ में प्रज्ञापनीयता भी चाहिए होती है।

मोहनीय कर्म कभी-कभी किसी चीज की ऐसी गाढ़ पकड़ बना लेता है जिससे ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने पर भी, और वास्तविक हकीकत को अनेक दृष्टांत, दलील, तर्क आदि से व्यवस्थित समझाए जाने पर भी उस पर विचार करने की तैयारी ही नहीं होती। और विचार ही नहीं करने के कारण सत्य तत्त्व को समझ और स्वी-कार नहीं कर पाते। अन्य श्रोता, जिसके ज्ञाना-वरणीय कर्म का खुद के जैसा ही क्षयोपशम है, वह निःशंकता रूप से सब कुछ समझ जाता है, किन्तु वह खुद मोहनीय की गाढ़ पकड़ के कारण उन बातों पर विचार ही नहीं कर सकता, इस कारण से सच्चे तत्त्व को समझ कर स्वीकार नहीं सकता। ऐसी गाढ़ पकड़ को अप्रज्ञापनीयता कहते हैं।

ऐसी अप्रज्ञापनीयता का अभाव होना, प्रज्ञापनी-यता है। इस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म का उपरोक्त वर्णित क्षयोपशम और इस प्रज्ञापनियता का होना, यही भूमिका है।

मूल में तो हम सभी की आत्मा में केवलज्ञान रूपी सूर्य विद्यमान है।

प्रभु ने कंदमूल को अभक्ष्य कहा है, उसके अनेक कारणों में से एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि, उसमें विपुल जीव हिंसा होती है। यद्यपि मानव को जीवन निर्वाह के लिए आहार-पानी चाहिए ही होता है। और इस आहार-पानी के रूप में वह जो ग्रहण करता है वह सब जीवों का कलेवर रूप होने के कारण जीव हिंसा होती ही है। फिर भी लोकी, खीरा इत्यादि सब्जियों में अपेक्षा से बहुत ही अल्प जीवों की हिंसा होती है। तुलनात्मक रूप

से आलू-प्याज आदि कंदमूल में अनंतानंत जीवों की हिंसा होती है। ये सभी जीव ही हैं, और सबको जीना ही अच्छा लगता है, मरना तो किसी को भी पसंद नहीं होता है।

जिस तरह से पैसे खर्च किए बिना भोजन नहीं मिलता, पर फिर भी यदि अल्प खर्च से भी समुचित भोजन मिल जाता हो, तो कोई सुज्ञ व्यक्ति उसके लिए उससे अनेक गुना ज्यादा खर्च नहीं करता है। इसी तरह से हिंसा के लिए भी सुज्ञजनों को अवश्य सोचना ही चाहिए। यदि अल्प हिंसा से आवश्यक भोजन मिल जाता हो, तो सुज्ञजन अनंतानंत जीव हिंसा करेगा ही नहीं। इसलिए जिसके एक-एक कण में अनंत जीव हैं, उन अनंत जीवों की हिंसा से बचने के लिए कंद-मूल त्याग अवश्य करना चाहिए।

प्रश्न :

कंदमूल के एक-एक कण में अनंत जीव होते हैं, इस बात का क्या प्रमाण है?

उत्तर :

हमें जो दिखाई देता है वह जीवों का शरीर हैं, जीव को हम देख ही नहीं सकते हैं। चाहे कितने भी पावरफुल माइक्रोस्कोप से देखो पर फिर भी जीव दिखाई नहीं देते। जीव हमारी पांचों में से किसी एक भी इंद्रिय का विषय नहीं है कि जिसके सहारे हम उनकी संख्या को जान सकें। इसलिए हमारे लिए प्रभु वचन ही इसके होने का प्रमाण है।

प्रश्न :

प्रभु वचन पर हमें श्रद्धा है, इसलिए हम तो उसके आधार से मान भी लेंगे। लेकिन जिन्हें प्रभु वचनों पर श्रद्धा नहीं हो, उनको समझाने के लिए कोई तर्क मिल सकेगा? हम श्रद्धा से यह बात मानते हैं, और मात्र इसीलिए इस बात को आज्ञाग्राह्य करते हैं। पर यदि कोई तर्क मिल जाए, तो उसे हेतुग्राह्य बना सकते हैं, और साथ ही हमारी श्रद्धा और भी दृढ़ बन जाएगी।

उत्तर :

प्रभु की किसी भी बात तर्कशून्य नहीं होती। कुछ बातों को तर्क के द्वारा सिद्ध करने के लिए अन्य अनेक तर्कों का सहारा लेना पड़ता है। प्रस्तुत बात की सिद्धि करने के लिए भी स्टेप बाय स्टेप बहुत तर्क और उनसे सिद्ध हो चुकी बातों का सहारा लेना जरूरी है। जैसे कि,

1. विश्व अनादि काल से है, अनंत है।

2. जीव अनादि काल से है।

3. जीव का मोक्ष संभवित है, और इसलिए जीवों का मोक्षगमन चालू ही है।

4. जीवों की संख्या अनंतानंत है।

5. जीव और पुद्गलों के रहने का स्थान परिमित है।

इन सभी बातों को संक्षिप्त रुप से देखते हैं।

1. दुनिया में लाखों मैन्युफैक्चरिंग कंपनियां हैं। हर एक कंपनी अपनी-अपनी प्रोडक्ट बनाती है, करोड़ों प्रकार की प्रोडक्ट तैयार होती रहती है। जो बिना रॉ-मटेरियल के बन जाती हो, क्या ऐसी एक भी प्रोडक्ट हो सकती है? और बनने के बाद और उपयोग में आने के बाद वह प्रोडक्ट कालांतर में नष्ट हो जाती है। क्या ऐसी कोई भी प्रोडक्ट होती है, जो अपने पीछे किसी भी प्रकार का भंगार (स्क्रैप) छोड़े बिना ही नष्ट हो जाती है?

उपरांत, यह भंगार ही किसी अन्य प्रोडक्ट का रॉ-मटेरियल बन जाता है। उसमें से जरूरी प्रक्रिया करके उसके द्वारा अन्य प्रोडक्ट तैयार किया जाता है, जो कालांतर में नष्ट होकर फिर से अन्य स्क्रैप तैयार करता है। और यह स्क्रैप कोई तीसरी ही प्रोडक्ट का रॉ-मटेरियल बन जाता है। फिर से नई प्रोडक्ट, नया भंगार... यह साइकिल चलती ही रहती है। यानी कि रॉ-मटेरियल से प्रोडक्ट, फिर भंगार, फिर से रॉ-मटेरियल, फिर प्रोडक्ट, फिर भंगार... यह चक्र चलता ही रहता है। यह चक्र कहीं टूट गया हो, या भविष्य में कभी भी टूट जाएगा, ऐसा संभव ही नहीं है। इसलिए विश्व का जो भी आदिकाल या प्रारंभ काल कहना हो, उस समय विश्व का जो भी स्वरूप था, वह बिल्कुल शून्य में से (पूर्व में किसी भी प्रकार का कोई भी रॉ-मटेरियल नहीं था, बिल्कुल शून्य था) उसका सर्जन हुआ था, ऐसा नहीं कह सकते। वरना तो उस समय की तरह आज भी ढेरों चीजें बिना रॉ-मटेरियल के पैदा होनी चाहिए। इसलिए प्रारंभ काल के रूप में जो भी समय था, उस काल के विश्व में जो भी वस्तुएँ पैदा हुई, उन हर एक वस्तुओं का पूर्व में रॉ-मटेरियल था ही। इसका अर्थ यह है कि रॉ-मटेरियल स्वरूप में विश्व, पूर्व में भी ऐसा ही था। यही बात हर काल पर लागू होने के कारण विश्व का कोई भी आदिकाल नहीं कह सकते हैं, इसलिए विश्व अनादिकाल से है।

कोई भी वस्तु रॉ-मटेरियल में से पैदा होती है। यह वास्तविकता तर्कसिद्ध भी है और प्रत्यक्ष सिद्ध भी है। पर फिर भी विश्व का आदिकाल मानने के लिए

उस आदिकाल में (कभी-कभी) बिना रॉ-मटेरियल के भी कोई चीज पैदा हो सकती है, यदि ऐसा मानना जरूरी बन जाए, तो इसे तर्क से तो नहीं मान सकते हैं। इसलिए श्रद्धा से ही मानना पड़ता है। और यदि यह बात श्रद्धा से मानने की तैयारी है, तो कंदमूल के एक-एक कण में अनंत जीव हैं, यह बात भी श्रद्धा से मान लेने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिये।

विज्ञान हमसे तर्क विरुद्ध बात करेगा, तो भी हम मान लेंगे, और प्रभु की बताई गई तर्कबद्ध बात को भी विज्ञान अगर मना करता हो, तो हम नहीं मानेंगे। यह तो विज्ञान के प्रति अंधश्रद्धा हुई।

इसीलिए ही Big Bang थियरी आदि श्रद्धेय नहीं है। जिसमें से विस्फोट होकर विश्व का सर्जन हुआ था, वह मूलभूत पदार्थ अनादिकालीन था? या कभी उत्पन्न हुआ था? अनादिकाल से था - यदि ऐसा कहेंगे, तो उसी तरह विश्व को भी अनादि-कालीन मानने में क्या परेशानी है? वर्तमान काल में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, या ऐसी कोई घटना नहीं है, जो विश्व को अनादिकालीन मानने से हमें रोक सके। और वह मूलभूत पदार्थ भी विश्व का ही एक स्वरूप है, क्योंकि बिल्कुल नया पैदा हुआ हो, ऐसा कुछ भी इस विश्व में देखने को नहीं मिलता है। मात्र एक स्वरूप में से दूसरे स्वरूप में रूपांतरण ही होता हुआ दिखाई देता है। आज के विज्ञान युग में, जब एडवांस टेक्नोलॉजी और सुपर कंप्यूटराइज्ड हैरत भरी मशीनों की बोलबाला है, ऐसे युग में भी यदि बिना रॉ-मटेरियल के, शून्य में से कुछ भी सृजन नहीं हो सकता, तो फिर विज्ञान की दृष्टि से जो बिल्कुल पत्थर युग था, उस समय में बिना किसी रॉ-मैटेरियल के सब कुछ पैदा होना - ऐसा मान लेना मात्र अंधश्रद्धा है, और कुछ भी नहीं।

इसलिए नया कुछ भी पैदा नहीं होता है सिर्फ रूपां-तरण होता रहता है। इस रूपांतरण का कोई अंत नहीं है, इसलिए विश्व का कोई प्रारंभ नहीं है और कोई अंत नहीं है। इसलिए विश्व अनादि-अनंत है।

Big Bang थिअरी के मुताबिक यदि मूलभूत पदार्थ को उत्पन्न हुआ मानेंगे, तो कुछ प्रश्न खड़े हो जाएँगे - वह पदार्थ किसमें से उत्पन्न हुआ था? कहाँ उत्पन्न हुआ था? किसने उत्पन्न किया था? कब उत्पन्न किया था? किसलिए उत्पन्न किया था? उसके पूर्व अनंत काल बीत चुका था, उस दौरान कभी भी उत्पन्न नहीं किया तो उस समय क्या जरूरत पड़ गई थी कि उसे उत्पन्न करना पड़ा?

और वह पदार्थ उत्पन्न होने के बाद फिर उसमें विस्फोट कब हुआ था? किसने किया था? क्यों किया था? किससे किया था? उसके पहले या बाद में नहीं लेकिन उस समय पर ही क्यों किया?

इन सभी प्रश्नों के तर्कसंगत उत्तर नहीं मिल रहे हो, तो इस थिअरी को माननीय कैसे कर सकते हैं?

अधिक बातें आगामी लेख में...

Everything is Online, We are Offline 14.0

पूज्य मुनिराज श्री निर्मोहसुंदर विजयजी म.सा.

(यहाँ पर दी गई जानकारी को शांत चित्त से अंत तक पढ़ने का अवश्य श्रम करें।)

ऑस्ट्रिया के जिस वैज्ञानिक की बात से पूर्व का लेख अधूरा छोड़ा था, उस बात का अनुसंधान करते हुए आज इस लेख की शुरुआत करते हैं।

कुछ दिन पूर्व बार एसोसिएशन के प्रमुख श्री नीलेशभाई ओज़ा के द्वारा देश की सर्वोच्च न्यायपालिका में दायर की हुई याचिका में दलील रखी गई थी, कि हमें टीका के पश्चात होने वाले रिएक्शन, या मृत्यु के बारे में डाटा उपलब्ध करवाया जाए। हमारी मांग है कि कितने लोगों को टीका लेने से क्या-क्या फायदा मिला, उसकी भी सूची दी जाए इत्यादि....

तब CJI (Chief Justice of India) ने सरकार से इस बारे में जवाब मांगा था। (आश्चर्य की बात है कि, लोगों के जीवन-मरण से जुड़े ऐसे मामलों की सुनवाई भी कोर्ट में बड़ी देरी के बाद की जाती है और ऐसी संवेदनशील चीजों में भी बहुत ही ढीलाई बरती जाती है, जो आरोपी है, उससे विनंती के सूर में पूछा जा रहा है।) सरकार ने जो जवाब दाखिल किया, वह चौकाने वाला था।

सरकार ने कहा, 'यदि हम टीकाकरण से जुड़े डाटा सार्वजनिक करेंगे तो लोग टीका लेने से हिचकिचाएंगे (वेक्सीन हेजिटेंसी आम जनता में बढ़ेगी) इसीलिए हम इसे प्रकाशित नहीं कर सकते हैं।'

सच तो यहां पर ही उजागर हो जाता है। जो व्यक्ति थोड़ा बहुत भी समझदार होगा, वो इस जवाब से पूरा का पूरा सच समझ लेगा कि खेल क्या चल रहा है? सच्चाई कड़वी होती है ऐसा सुना था, अब प्रत्यक्ष है।

ऑस्ट्रिया के वैज्ञानिक ने जब इस सच्चाई को खोलने का प्रयास किया, तो आधे वक्तव्य में ही उसे उठा लिया गया और 10 दिन में उसकी मौत हो चुकी थी। ऐसा उसने क्या कहा था?

आपके शरीर में टीके के माध्यम से एक ऐसी चीज डाली जा रही है, जो अंदर

जाकर रक्त वाहिनी में नैनो रेजर (सूक्ष्म ब्लेड) बन जाती है और जितना रक्त परिभ्रमण तेज होता है, उतना वह अधिक तेजी से काम करता है, जिसके कारण फिटनेस के लिए प्रसिद्ध ऐसे कन्नड़ पिक्चरों के हीरो राजकुमार जैसे या सिद्धार्थ शुक्ला (बिग बॉस सीजन-13 के विनर) जैसे फटाफट ऊपर जा रहे हैं।

जो लोग कसरत, योगा, प्राणायाम इत्यादि से स्वयं को फिट रखते आए थे, वे लोग इसकी चपेट में जल्दी आ रहे हैं।

क्योंकि ग्रेफाईन से बनी ब्लेड रक्त के अंदर ही रहकर रक्तवाहिनी (नली) को अंदर से काटती जाती है। आश्चर्य की बात यह है कि, खेल मैदान में फुटबॉल या हॉकी जैसे खेल के बीच में खिलाड़ी गिर जाए, उसके नाक में से, मुंह में से अचानक खून निकलने लगे, ऐसे अनेक किस्से पिछले एक-दो साल में बन चुके हैं। वे लोग On the spot खत्म भी हो चुके हैं, क्योंकि जो जितना तेज, उसको उतनी ही ज्यादा समस्या, और जो जितना शांत, आलसी, उसको इतनी समस्याएं देरी से आएगी।

एक रिसर्च यह भी कह रहा है कि, (टीका लेने के बाद) जो इंसान अपने शरीर में प्रकृति विरुद्ध हानिकर पदार्थ ज्यादा लेगा, उसे भी ज्यादा समस्याएं कर सकता है और जो इंसान संयमित जीवन जी रहा है, उसे लंबे अरसे तक शायद ही कुछ समस्या आए। (छट्ठे प्रश्न का उत्तर पूर्ण हुआ, अब सातवें और आठवें प्रश्न का उत्तर...)

जो लोग टीकाकरण के खिलाफ अपनी पूरी ताकत झोंक रहे हैं, उन्हें खास बताना है कि, एकांत दृष्टि छोड़कर विस्तृत दृष्टि से, अनेकांत दृष्टि से सोचो, क्योंकि अब केवल टीके में ही नहीं, खाने पीने की अनेक चीजों में भी वो ही चीज डाली जानी है, जो शरीर के लिए बहुत ही हानिकर सिद्ध हो चुकी है।

दृष्टांत के तौर पर फेरोफ्लुड... एक प्रकार का सेमि लिक्विड द्रव्य है। (जो पूरा का पूरा प्रवाही भी ना हो और धन भी ना हो, उसे सेमी लिक्विड कहते हैं) इस बारे में रिसर्च क्या कहता है?

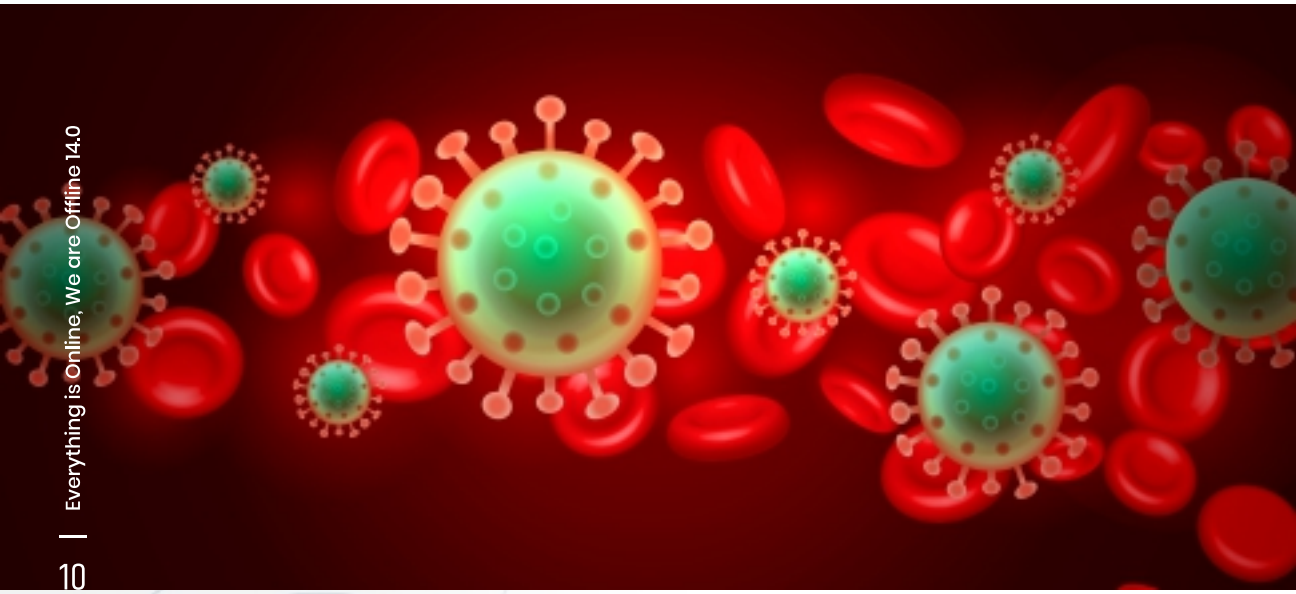

Ferrofluid is a Liquid that is a Attracted to the poles of a Magnet.

It is a Colloidal Liquid Made of Nano scale Ferromagnetic, or Ferrimagnetic, particles Suspended in a Carrier Fluid (usually an organic Solvent or water) Each Magnetic Particle is thoroughly coated with a Surfactant to inhibit clumping.

Ferro fluid made of Nanoparticles of Iron and When you apply a Magnetic Field to them, They Follow the Magnetic Field line, In this Spiky Pattern Here.

(हिंदी रुपांतरण - फेरों फ्लुड एक ऐसा प्रवाही है, जो चुंबकीय ध्रुव की ओर आकर्षित होता है। वह (फेरो फ्लुड) एक ऐसा धुंधला सा प्रवाही है जो 'नेनो (सूक्ष्म)' नाप के फेरो मेग्नेटिक या फेरी मेग्नेटिक से बना है। इसका द्रव्य करियर बनने वाले प्रवाही से मिश्रित रहता है (जो कि पानी या ऑर्गेनिक द्रव के रूप में रहता है)

प्रत्येक चुंबकीय द्रव्य सर्फेक्टन्ट से आवरित (कोटेड) रहता है, जो उन द्रव्य के तत्त्व छोटे-छोटे (अणुओं) पार्टिकल को इकट्ठा होने से रोकता है। फेरों फ्लूईड नेनो (सूक्ष्म) लोह के सूक्ष्म अणुओं से बना हुआ है। और... जब चुंबकीय क्षेत्र के प्रभाव में उसे लाया जाता है, तब वह चुंबकीय क्षेत्रीय रेखा का अनुसरण करता है और... नुकीला (धारदार) बन जाता है।)

वर्तमान में जो टीके दिए जा रहे हैं, उससे हृदय संबंधित रोग बहुत ज्यादा बढ़े हैं (ऐसा मैं नहीं कहता हूं, मुख्यधारा का मीडिया, राजस्थान पत्रिका का फ्रंट पेज स्वयं कह रहा है, कि 82.5 प्रतिशत लोग स्वीकार कर चुके हैं कि, टीका लेने के पश्चात हृदय कमजोर हो चुका है।)

हमने इससे पूर्व के लेख में भी स्पष्ट किया था कि, शरीर का अपना मैग्नेटिक फील्ड तीन स्थान में है (1) मस्तिष्क (2) हृदय (3) नाभि के नीचे का हिस्सा...

जब से टीके के माध्यम से ग्रेफाईन शरीर में अंदर डाला गया है, तीनों स्थान डेमेज (क्षतिग्रस्त) होने के समाचार लगातार कान पर आ रहे हैं। किसी को ब्रेईन स्ट्रोक, किसी को हार्ट फैल, तो किसी को बच्चा पैदा करने में समस्या...

हार्ट बिगड़ने पर वैज्ञानिक (यहां पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा खरीदे गए वैज्ञानिक समझना है।) सलाह दे रहे हैं कि, हार्ट रिलेटेड डिसीज के अंदर फेरोफ्लुईड को उपयोग में लिया जा सकता है। और इस प्रवाही को शरीर के अंदर सुई के माध्यम से डाला जा सकता है, जो दिल को अच्छा करने में उपयुक्त है (हकीकत में ज्यादा समस्याएं खड़ी करेगा क्योंकि फेरोफ्लुईड सुक्ष्म लोह कणों से बना है। चुंबकीय क्षेत्र के प्रभाव से प्रभावित भी

होता है।)

कुछ वैज्ञानिकों की थ्योरी तो और भी हास्यास्पद है, वे लोग कह रहे हैं कि, फेरोफ्लुईड शरीर में फैल जाएगा, शरीर में विभिन्न अंगों में फैली बीमारियों को एकत्रित कर लेगा और फिर जब शरीर के बाहर चुंबक रखा जाएगा तो चुंबक वाले हिस्से में पूरे शरीर में फैला फेरोफ्लुईड एकत्रित हो जाएगा, फिर बीमारियों को आसानी से निकाल दी जाएगी।

अब यहां पर हम एक विस्फोटक और खतरनाक जानकारी शेयर कर रहें है, क्यों कि पूरी दुनिया आज टीकाकरण के खिलाफ धीरे-धीरे लामबंध होती जा रही है और दिक्कत यह है कि जब दुश्मन अपना मोहरा बदल लेता है, तब दुश्मन के नए मोहरे को समझने में हम बहुत देर कर देते हैं।

रावण लगातार रूप बदल रहा था, अतः लक्ष्मण-जी एवं रामचंद्रजी को भी उसके मूल रुप को ढूंढ कर मारने में देर हो रही थी। जब दुश्मन एक ही रूप में हो तो उसे समझना आसान होता है। लेकिन जब अनेक रूप में हमारे आजू-बाजू हो तब हम असमंजस में पड जाते हैं।

हम बूस्टर डोज के खिलाफ लड़ने की सोचे, तो नाम बदल कर आ जाएगा प्रिकोशन डोज। हम मोन्सेन्टो कंपनी के खिलाफ (जीनेटीकली मॉडि-फाइड बीज बनाने वाली कंपनी का नाम मोन्सेन्टो था।) लड़ने की तैयारी करें तो पता चलता है कि अब मोन्सेन्टो बेयर कंपनी में मर्ज हो चुकी है, अब मोन्सेन्टो बीज नहीं बनाती है।

100 साल भारत को गुलाम बनाने वाली ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ हम कुछ करने की सोचें, तो पता चलता है कि उस कंपनी के मालिक रोथ्सचाईल्ड ग्रुप ने उसे भारतीय लोगों को ही बेच दी है। यह लड़ाई सूक्ष्म बुद्धि वाला ही लड़ सकता है, वरना क्या होगा कि हम सिर्फ नाम एवं बाह्य रुप के सामने जंग लड़ते लड़ते थक जाएंगे, दुश्मन लगातार नाम एवं बाह्य रूप बदल रहा है। बदलता रहता है।

करौली में जिस मुस्लिमों की दुकानें जलाई गई, बाद में पता चला कि वो दुकाने तो असलियत में हिंदू भाईयों की ही थी, मुस्लिमों ने तो उसे किराए पर रखा था। हिंदुओं के द्वारा ही हिंदुओं का भयानक नुकसान हो गया।

(क्रमशः)

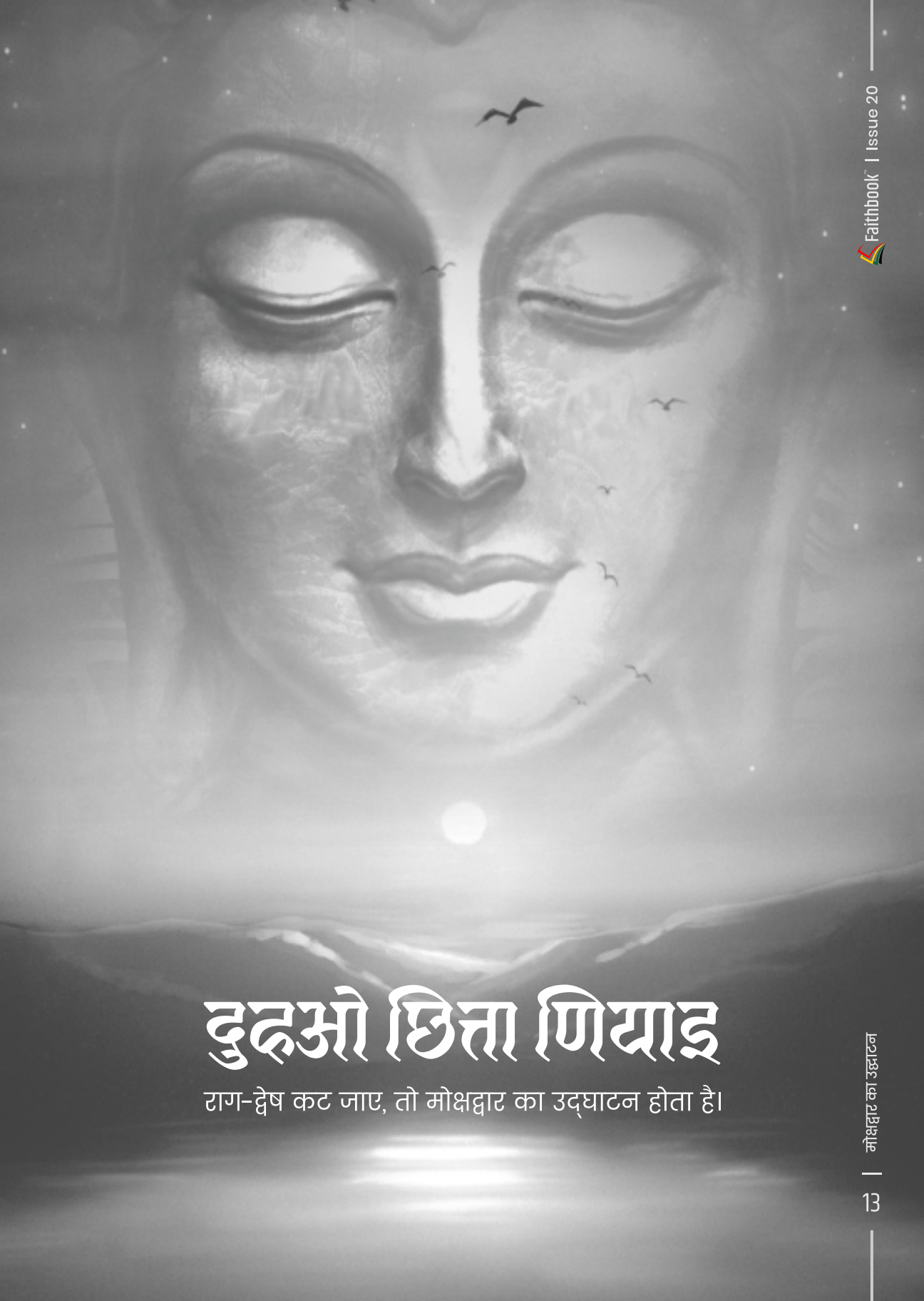

दुक्खो छित्ता णियाइ

राग-द्वेष कट जाए, तो मोक्षद्वार का उद्घाटन होता है।

मोक्षद्वार का उद्‌घाटन

प्रियम्

सुनी सुमता की विनती रे, चिदानंद महाराज।
कुमता नेह निवार के प्यारे, लीनो शिवपुर राज॥

सुमता की विनती सुनकर चिदानंद महाराज ने कुमता के प्रति अपना स्नेह छोड़ा और शिवपुर का राज पा लिया।

सुनी समता
की
विनती रे,
चिदानंद
महाराज।

शोभनो मोक्षानुकूलतयाऽऽत्महितप्रयोजकत्वेन सुन्दरो मतो यस्याः सा सुमता।

जिसका मत सुंदर है, वह सुमता है। सुंदर क्यों है? क्योंकि वह मोक्षानुकूल है, आत्महित प्रयोजक है। चिदानंद महाराज, यानी आत्मा। वे महाराज क्यों है? उसका जवाब उसके नाम में ही है। चित् और आनंद का साम्राज्य उसके पास है, इसलिए वे महाराज हैं।

इस पंक्ति में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शब्द है 'सुनी'। सुमता भी अनादि है, और आत्मा भी अनादि है। असली प्रश्न तो 'श्रवण' का था। माँ भला चाहती है, सच कहती है, वैसा करने से 100% फायदा होने वाला हो, पर बेटा सुने ही नहीं तो? ऐसी ही स्थिति यहाँ उपस्थित हुई है। आत्मविशुद्धि की ओर जाने वाला आत्मा का पर्याय आत्महित को चाहता है, आत्महित हो – ऐसा ही कहता है, और उसका अनुसरण करने से 100% आत्महित होने वाला ही है, पर आत्मा सुने ही नहीं तो?

'सुनी', सुनने का भावार्थ है – ध्यान देना।
सुनने का तात्पर्य है – समझना।
सुनने का रहस्यार्थ है – स्वीकार करना।
सुनने का गर्भार्थ है – कर्तव्यबुद्धि का विषय बनाना।
सुनने का ऐदम्पर्यार्थ है – अनुसरण करना।

'सुनी,' सुमता भीतरी सद्गुरु है।

उसका कहा हुआ नहीं सुनना – इसी का नाम संसार है। उसका सुनना – उसका नाम मोक्ष है।

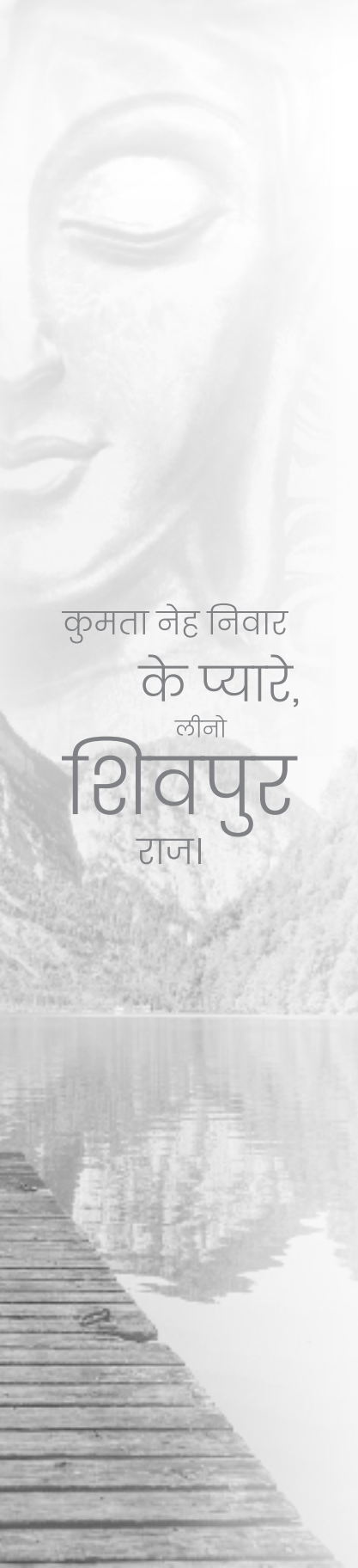

कुमता नेह निवार
के प्यारे,
लीनो
शिवपुर
राज।

जो बाहर के सद्गुरु की सुनता है, वह हकीकत में अंदर के सद्गुरु की भी सुनता है। जो अंदर के सद्गुरु की सुनता है, वह हकीकत में बाहर के सद्गुरु की भी सुनता है। सद्गुरु तो सद्गुरु ही है। बाह्य या आंतरिक भेद से उनका ज्यादा से ज्यादा व्यवहारिक भेद हो सकता है, नैश्चयिक नहीं। जो आपको आत्म-विशुद्धि की ओर खींच ले जाए, वह सद्गुरु है। वह आपका खुद का पर्याय भी हो सकता है।

याद आता है इष्टोपदेश :

स्वस्मिन सद्भिलाषित्वा-दभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोत्कृत्वा-दात्मैव गुरुरात्मनः॥

स्व में शुभाभिलाषा, हित की ज्ञापकता, स्वहित प्रयोजकता – इन तीन कारणों से आत्मा ही आत्मा की गुरु है।

'सुनी', उसे नहीं सुनने के कारण ही तो सारी दुर्घटनाएँ हुईं हैं। उसे सुनने से ही सारी दुर्घटनाओं का अंत होने वाला है। आज नहीं तो कल, उसे सुने बिना कोई चारा नहीं है। शायद अनंत काल के बाद भी कल्याण होगा, तो उसे सुनकर ही होगा, तो आज ही हमें हमारे कान खुले क्यों नहीं कर देने चाहिए? सुमता को सुनने का परिणाम कितना सुंदर है!

कुमता नेह निवार के प्यारे, लीनो शिवपुर राज।

कुमता; कुत्सितो मतो भीमभवभ्रमिहेतुतया स्वरूपासुन्दरतया च यस्याः सा कुमता।

अर्थात् जिसका मत खराब हो, वह कुमता है। क्यों खराब है उसका मत? यह भयानक भवभ्रमण का कारण है, इसीलिए; और स्वरुप से भी खराब है, इसलिए।

यह आत्मा का औपाधिक परिणाम है, यह भीतरी कुगुरु है। अकल्याण मित्र, भ्रष्ट मीडिया, विजातीय व्यक्ति, तथाकथित मनोरंजन के साधन – यह सारे बाह्य कुगुरु हैं।

कुगुरु भी अनादि है और आत्मा भी अनादि है। 'कुगुरु' का होना आत्मा की करुणता नहीं है, बल्कि कुगुरु के प्रति स्नेह होना आत्मा की करुणता है। कुगुरु के प्रति कोमलता भरा व्यवहार, कुगुरु के प्रति सॉफ्ट कॉर्नर, कुगुरु के प्रति खिंचाव, आत्मा के सत्यानाश में इनके सिवाय अन्य कोई भी कारण नहीं है। मोक्ष कब? कल्याण कब? सर्वदुःख मुक्ति कब? इसका एक ही पद में जवाब है :

कुमता नेह निवार के प्यारे

कुमता

कुमता के प्रति स्नेह गया, मतलब दुःख गया।
कुमता के प्रति स्नेह गया, मतलब दुर्गति गई।
कुमता के प्रति स्नेह गया, मतलब संसार गया।
कुमता के प्रति स्नेह गया, मतलब कर्म का बंधन गया।

मोक्ष कब?
कल्याण कब?
सर्वदुःख
मुक्ति कब?

याद आते हैं उपनिषद् :

छित्त्वा तन्तुं न बध्यते

आपने तंतु को ही छेद दिया, अब आप कैसे बँध सकते हैं? किससे बँध सकते हैं?

याद आते हैं आगम:

दुहओ छित्ता णियाइ

राग-द्वेष कट जाए, तो मोक्षद्वार का उद्घाटन होता है। रिबन काटकर ओपनिंग करने का रिवाज आधुनिक नहीं है, अनादि है। फर्क केवल तीन वस्तुओं का है, रिबन का, काटने का और ओपनिंग का।

कुमता नेह निवार के प्यारे, लीनो शिवपुर राज

कुमता के प्रति नेह, यह रिबन है; उसका निवारण यानी – काटना, ओपनिंग मतलब शिवपुर राज लेना।

कुमता की सारी झंझट सुख की प्राप्ति के लिए है, लेकिन सुख तो कुमता को छोड़ने से ही मिलने वाला है। एक तरफ कुमता के त्याग के सिवाय दूसरा कोई विकल्प ही नहीं है, और दूसरी तरफ कुमता का स्नेह, कुमता के त्याग को शेखचिल्ली के स्वप्न जैसा बना रहा है। अनादि के इस चक्र को तोड़ने के लिए यह भव प्राप्त हुआ है। चिदानंद जी जिसका भूतकाल में निर्देश कर रहे हैं, वह हमारा वर्तमान बन सकता है। उसे वर्तमान बनाने के लिए ही ये भव है।

कुमता नेह निवार के प्यारे, लीनो शिवपुर राज

कुमता के प्रति नेह – यह हेय है। उसका निवारण उपादेय है। इस हान और उपादान का फल ही शिवनगर का साम्राज्य है।

चिदानंद जी महाराज का एक प्रिय शब्द है – 'प्यारे'। स्वयं प्रभु जो संबोधन करते हैं, वह याद आता है – "देवाणुप्पिया" ... हे देवानुप्रिय। जीव को सत्य मिल जाये उतना काफी नहीं है, उसे सौहार्द भी चाहिए; उसे उपदेश मिल जाए उतना पर्याप्त नहीं है, उसे उर्मि भी चाहिए। इसीलिए निश्चय के शिखर पर विराजित महापुरुष भी हमें स्नेह तथा प्रेम से नहला देने वाला संबोधन करते हैं – '... प्यारे।' जैसे कि सर पर फिरता हुआ महापुरुषों का उष्मापूर्ण हाथ; जैसे कि पीठबल देता हुआ, पीठ पर फिरता हुआ हाथ। कैसी उनकी करुणा! कैसा तो उनका वात्सल्य! एक क्षण तो मेरे जैसा भी सहम गया..., मुझ में इस वात्सल्य को पाने की योग्यता है क्या? और दूसरी ही क्षण में उससे ही समाधान मिलता है कि, ऐसी योग्यता नहीं है, इसीलिए वात्सल्य बरसाना पड़ता है। क्या समर्पित शिष्य को गुरु से मिठास की अपेक्षा होती है? उसके लिए तो सद्गुरु की तीखी वाणी भी गन्ने के रस के समान होती है।

अगले ही क्षण में दूसरा विकल्प उठता है; महापुरुष पात्रता की अपेक्षा रखे बिना एकान्तवत्सल की प्रकृति वाले ही होते हैं। इसलिए 'मैं लायक हूँ या नहीं' वे तो अपना प्यार बरसाने वाले ही हैं। और यह प्यार मेरी अपात्रता के कारण असद् रुप में परिणाम प्राप्त करे, इस भयस्थान का क्या? इसका जवाब अगला विकल्प देता है, जो योग-बिंदु के इस श्लोक में है:

हेतुमस्य परं भावं, सत्त्वाद्यागोनिवर्तनम्।
प्रधानकरुणा रूपं, ब्रुवते सूक्ष्मदर्शिनः।।

श्रेष्ठ करुणा, एक ऐसा प्रकृष्ट भाव, जिससे सामने वाले व्यक्ति का अपराधभाव समाप्त हो जाता है। यह भाव भविष्य में पाप की संभावनाओं को समाप्त कर देता है, ऐसा सूक्ष्मदर्शियों का कहना है।

महापुरुषों की करुणा का यह स्वभाव है, जो चंड़कौशिक जैसों का भी जहर उतार देता है, तो मुझ जैसे का भी काम हो जायेगा।

अब अगला विकल्प उठता है कि, महापुरुषों के 'प्यारे' बनने के बाद मेरी जिम्मेदारी और ज्यादा बढ़ जाती है। महापुरुष भी सही है ना! हमारे ऊपर प्यार बरसाकर हमें कैसी जिम्मेदारियाँ सौंप दी।

लेकिन इसके उत्तर में अगला विकल्प भी तैयार है। उनकी करुणा और वात्सल्य भाव को देखने के बाद उनके ऊपर जो बहुमानभाव प्रकट

मैं लायक हूँ या नहीं

हुआ है, उससे उन जिम्मेदारियों के संपूर्ण निर्वाह की ऊर्जा मिल सकती है। और वह मिलती रहे, इसके लिए हमारी ओर से 'प्यारे' संबोधन को ग्रहण करना भी उचित है, और उनके पक्ष से 'प्यारे' कहना भी औचित्य है।

महापुरुषों की अस्मिता अद्भुत है।

याद आता है प्रशमरति :

सद्भिः सुपरिगृहीतं, यत्किञ्चिदपि प्रकाशतां याति।
मलिनोऽपि यथा हरिणः, प्रकाशते पूर्णचन्द्रस्थः।।

सद्भिः सुपरिगृहीतं, यत्किञ्चिदपि प्रकाशतां याति।
मलिनोऽपि यथा हरिणः, प्रकाशते पूर्णचन्द्रस्थः।।

सज्जन जिसे गोद लेते हैं, वह चाहे कैसा भी हो, फिर भी यशस्वी बन जाता है। पूर्णचन्द्र में कभी हिरण को देखा है? कैसा मलिन होता है वह! किंतु फिर भी कैसा शोभास्पद बन जाता है!

'प्यारे' up to end... पूरा मोक्षमार्ग यहाँ पर ही समा गया है। पहली नजर से ऐसा लगता है कि, 'चिदानंद' और 'प्यारे' इन दोनों के बीच कोई मेल ही नहीं है। पर अब लगता है कि इन दोनों के बीच मेल अवश्य है, और बहुत घनिष्ठ है। वात्सल्य के वारिधि तो सद्गुरु ही होगे ना ?

बस... प्यारे को आत्मसात् करते हैं, प्यारे बनते हैं, प्यारा करते हैं, प्यारे पंथ पर चढ़कर प्यारा प्राप्त कर लेते हैं। हमारी अब तक की यात्रा इसके लिए ही थी। अब यह कर लेंगे तो हमारी यह यात्रा सफल। नहीं करेंगे तो कुएँ पर जाकर प्यासे वापस आये, ऐसी बात हो जाएगी। संस्कृत में 2 शब्द आते हैं:

देवानुप्रिय = देवों को भी प्रिय।

देवानांप्रिय = मूर्ख।

हमें कौन से प्रिय बनना है, यह हमें तय करना है।

(क्रमशः)

प्रभु का पैर, पुण्य का ढेर

पूज्य मुनिराज श्री धनंजय विजयजी म.सा.

दिव्यध्वनि से ध्वजारोहण

वि.सं. 1515 (ई.स. 1459) का वर्ष था। शिखर का कार्य पूर्ण होने को था। अब काजलशा परिवार में कर्ता पुरुष होने के कारण कामकाज पर पूरा ध्यान दे रहा था।

मृगादेवी की सहमति लेकर काजलशा ने दंड-ध्वजा के लिए उत्तम मुहूर्त देखा। शुभ मुहूर्त की घड़ी आते ही भव्य महोत्सव का आयोजन कर काजलशा शिखर पर दंडकलश की प्रतिष्ठा और ध्वजारोहण करने के लिए चढ़ा। लेकिन यश की लालसा मन में धारण करने वाले कपटी काजल-शा की मैली मुराद सफल नहीं हुई। जैसे ही दंड प्रतिष्ठित कर ध्वजा चढ़ाई, वैसे ही दंड, ध्वजा सहित नीचे गिर गया। पुनः दंड प्रतिष्ठित कर ध्वजा चढ़ाई, तो फिर से वह नीचे गिर गया। ऐसा एक नही, दो नहीं, तीसरी बार हुआ।

तीन-तीन बार दंड सहित ध्वजा नीचे गिरने से सकल संघ चिंतित हो गया। महाराणा उदयपाल और महाजन ने श्री गोडी पार्श्वनाथ प्रभु के समक्ष मंगल कार्य करके क्षमा प्रार्थना की। तभी आकाश में खेतल-वीर यक्ष ने दिव्यध्वनि द्वारा उद्घोषणा की, "जिन हाथों से श्री गोडी पार्श्वनाथ भगवान के परमभक्त मेघाशा की हत्या हुई है, उन हाथों से इस शिखर पर ध्वजा नहीं चढ़ेगी। ये अपवित्र है, बिना प्रयत्न किये यश प्राप्त करना चाहता है। इस दंड की प्रतिष्ठा और ध्वजारोहण मेघाशा के रत्नों जैसे पुत्र महिया और मेरा के हाथों से होगी, तो ही दंड और ध्वजा स्थिर रहेगी!

हे राजा उदयपाल! तीन-तीन बार ध्वजा-दंड नीचे गिरने के कारण प्रभु चिरकाल तक यहाँ विराजित नहीं रहेंगे। जब तुम्हें स्वप्न में संकेत प्राप्त होगा, तब तुम्हारे गृह में उचित स्थान पर प्रभु की प्रतिष्ठा कर अत्यन्त भक्तिभाव से पूजा करना!"

देववाणी सुनकर राजा उदय-पाल तथा संकलसंघ ने महिया और मेरा दोनों भाईयों को दंडप्रतिष्ठा-ध्वजारोहण के लिए विनती की, "आपके पिताश्री के स्वप्न को आप ही सम्पूर्ण करो!"

दोनों भाइयों ने दंडप्रतिष्ठा तथा ध्वजारोहण की विधि उल्लास-पूर्वक सम्पन्न की। जैसे ही

जिनालय के शिखर पर ध्वजा लहराई, वैसे ही आकाश में दिव्यध्वनि हुई। वाजिंत्रों की आवाज से सबके रोम-रोम प्रफुल्लित हो गए। लोग ढोल-नगाड़े बजाने लगे। मृगादेवी के हृदय में भी हर्ष का पार नहीं रहा। ऐसा आभास हुआ कि मानो आज मेघाशा भी दिव्यलोक से आकर उपस्थित हुए हैं। ऐसा दिव्य आल्हादक वाता-वरण निर्मित हुआ।

दिन बीतते गए। एक दिन श्रेष्ठिजनों ने दोनों भाइयों से विनती की, "अपने गाँव में चौबीस गोत्र के श्रावक रहते हैं। उनकी ऐसी इच्छा है कि जिनालय की चारों ओर चौबीस देवकुलिकाओं का निर्माण कराना है। यदि आप आज्ञा दें, तो ही यह कार्य पूर्ण हो सकता है।"

दोनों भाई प्रेमपूर्वक बोले, "आप भावडों की (सिंध प्रदेश के निवासी जैन श्रावक भावड कहे जाते थे) इच्छा है, तो खुशी से देवकुलिकाओं का निर्माण करें!"

थोड़े ही दिनों में वहाँ देवकुलिकाओं का निर्माण कर प्रभुजी की प्रतिष्ठाएँ हुईं।

मुख्य शिखर को आवर्तित चौबीस छोटी-छोटी देवकुलिकाओं पर लहराने वाली ध्वजाओं से जिनालय अत्यन्त अद्भुत लग रहा था।

प्रभु का पैर, पुण्य का ढेर

वि. सं. 1494, ई. स. 1438 की माघ सुदी 5, गुरुवार के दिन गोड़ीपुर की गद्दी पर विराजित हुए प्रभुजी का प्रभाव दिन-प्रतिदिन देश-विदेश में व्याप्त हो रहा था। प्रभु के दर्शन और पूजा करने हेतु दूर-दूर से भक्त आते थे, और अपने तन, मन और नयनों को पावन करते थे। किन्तु...

समय के प्रवाह में बहते-बहते वि. सं. 1716, ई. स. 1660 तक प्रभु गोड़ीपुर के भव्य जिनालय में भव्य जीवों को तारते हुए विराजमान रहे। अर्थात् 278 वर्षों तक प्रभु मन्दिर के पबासन पर विराजित रहे। तत्पश्चात वहाँ के शासक सोढा सूतोजी प्रभु को गोडी गाँव से वीरावाव ले गए।

वीरावाव आने के बाद दर्शनार्थियों की भीड़ उमड़ने लगी। लोग प्रभु के चरणों में सोना, चांदी और नकद राशि का ढेर लगाने लगे। इस आवक का आधा भाग पुजारी को और आधा भाग सोढाओं को मिलता था। किन्तु सोढा इस आवक में गड़बड़ी कर रहे हैं, ऐसा लगने के कारण सूतोजी भगवान को बखासर ले गए।

बखासर में पहले वर्ष प्रभुजी के दर्शन के लिए मेला भी आयोजित हुआ। मूर्ति को नीम के पेड़ के नीचे सुरक्षित रखा गया, और मेला शुरु होने पर उसे बाहर निकाला गया।

उस समय सूरत के नवलखा परिवार की श्राविका

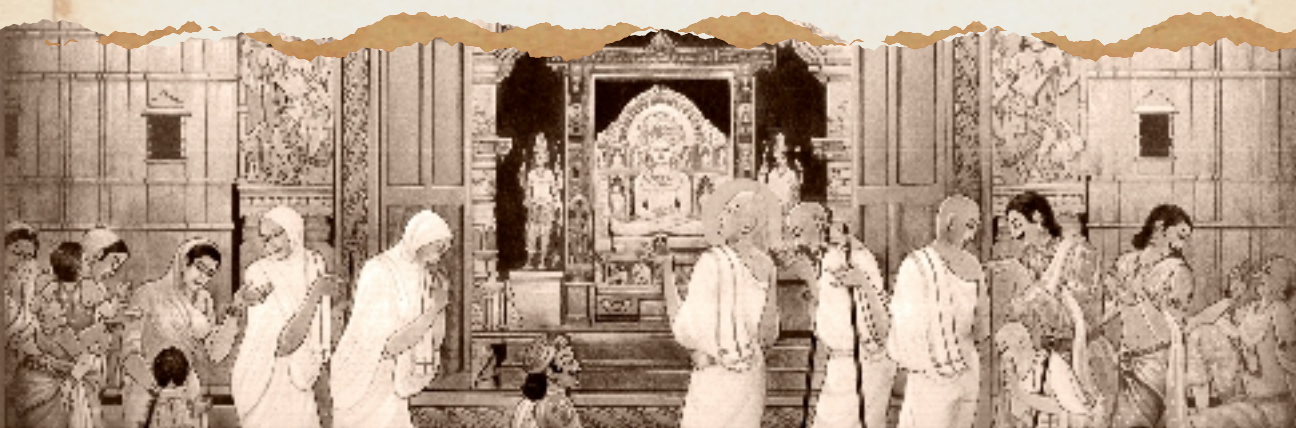

दर्शन के लिए आई। सूतोजी ने दर्शन करवाने के लिए बहुत पैसे मांगे, अन्ततः 9000/- लेकर उन्हें दर्शन कराया गया।

फिर सूतोजी मूर्ति को वीरावाव लेकर आए और वहाँ भी मेला लगाया गया। मेले में दर्शन के अच्छे पैसे मिलते थे। अच्छी ऑफर होने के कारण सोढा मूर्ति को लेकर रेगिस्तान को पार करके मोरवाड़ा आदि स्थानों पर भी लेकर जाते, और उस समय 100 चौकीदार भी उनके साथ रहते थे।

मेले इस प्रकार लगे - सुई गाँव ई. स. 1764 में, मोरावाडा ई. स. 1788-96, 1810-22, वीरावाव ई. स. 1824 में।

1932 में तत्कालीन सोढा शासक पुंजोजी अपने दुश्मन, सिंध के मीरो के हाथ पकड़े गए और मारे गए। उसके बाद किसी ने मूर्ति नहीं देखी। पुंजोजी स्वयं मूर्ति को निकालते और रखते थे। अपने वारिस को मूर्ति कहाँ छुपाई वह स्थान बताना रह गया,और अचानक उनकी मृत्यु होने के कारण उस मूर्ति का क्या हुआ वह किसी को नहीं पता।

कहते हैं कि पुंजोजी एक स्थान पर मूर्ति छुपाते थे, और फिर उन्हें स्वप्न आता कि इस स्थान पर खुदाई करना। अब मूर्ति कहीं और छुपाई थी, और खुदाई का स्वप्न स्थान कहीं और होता, किन्तु फिर भी स्वप्न के हिसाब से वह मूर्ति मिल जाती थी।

मूर्ति की ललाट पर बहुमूल्य हीरा (तिलक) लगा हुआ था और वक्ष में स्तन प्रदेश पर दो हीरे लगे हुए थे। इस प्रकार उस समय के स्तोत्र ऐसा कहते हैं कि यह मूर्ति विलुप्त हो गई। किन्तु सोढा दरबारों के राजबारोट केशवजी मानाजी अणदाजी (मूल भद्रेश्वर, पारकर के) के पास एक पुस्तक प्राप्त होती है। उसमें उपरोक्त विवरण तो है ही, किन्तु उसके बाद की ऐसी जानकारी भी मिलती है जो अन्य कहीं प्राप्त नहीं होती। उस पुस्तक की भाषा पुरानी गुजराती है और शिरोरेखा वाली गुजराती में लेखनी लिखी हुई है।

पुंजोजी की मृत्यु के थोड़े समय तक मूर्ति जमीन में छुपी हुई रही, उसके बाद ढकवाणी के ढोर पर स्थित मूर्ति को नारणजी सोढा ने बाहर निकाला।

पारकर में उस समय मीरो का अधिकारी मिरोज-खान बलोच रहता था। वह सोढाओं को बहुत परेशान करता था, इसलिए नारणजी सोढा मूर्ति लेकर गुजरात आ गए और कुण्डलिया गाँव में अपने सम्बन्धी के यहाँ रहे।

उस समय अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए एक बड़ा संघ राधनपुर आया और वहाँ 15-20 दिन रुका। संघ के लोगों को गोडीजी के दर्शन की बहुत भावना थी। राधनपुर के अग्रणी नरपतलाल ज़ोटा को पता चला, तो उन्होंने कुण्डलिया में नारायणजी सोढा को पत्र लिखा। सोढा मूर्ति लेकर राधनपुर गए।

प्रशस्ति न. 1 में लिखा है कि, जैसलमेर निवासी खरतरगच्छीय, बाफणा गोत्र के शा. गुमानचन्द पुत्र शा. बादरमल जी आदि पांच भाइयों ने जैसलमेर, उदयपुर और कोटा से एक बहुत बड़ा संघ निकाला था। वह संघ पाली से सं. 1891 की माघ सुदी तेरस को निकल कर शत्रुंजय, गिरनार आदि अनेक तीर्थों की यात्रा करके श्री शंखेश्वर होकर आषाढ़ महीने में राधनपुर पहुँचा। जब यह संघ सिद्धाचल जी पहुँचा था, तब वहाँ ढाई लाख यात्री इकट्ठा हुए थे। यह संघ बहुत बड़ा था, इसमें हजारों

लोग, हजारों गाड़ियाँ, हजारों सवारी, हजारों ऊँट, हजारों चौकीदार, अनेक हाथी, अनेक पालखियाँ, अनेक रथ आदि बहुत सामग्रियाँ थीं।

जब यह संघ राधनपुर पहुँचा, उस समय एक अंग्रेज भी प्रभु श्री गोडीजी के दर्शन करने के लिए राधनपुर आया था। उस समय राधनपुर में पानी की बहुत कमी रहती थी, किन्तु श्री गोडीजी के प्रभाव से गेवाउ नामक एक नदी निकली। उस नदी से बहता हुआ पानी समुचित मात्रा में मिलने के कारण पूरे गाँव और संघ में शान्ति हुई। संघवी ने श्री गोडीजी प्रभु की प्रतिमा को हाथी की सवारी में विराजित करके अत्यन्त धूमधाम से बहुत बड़ी शोभायात्रा निकाली। यह शोभायात्रा लगातार सात दिन तक राधनपुर गाँव में घुमाई और सभी लोगों को प्रभु गोडीजी के दर्शन करवाए गए। उस समय वरघोड़े में प्रभुजी के वर्धापन के साढ़े तीन लाख रुपये आए। अनेक भोजन समारोह भी हुए और संघ ने वहाँ पर सवा महीने तक स्थिरता की। संघवी ने पक्का निर्माण करवाकर उसके ऊपर छत्र बनाकर उसमें श्री गोडीजी की पादुका विराजित की।

राधनपुर में सात दिन तक उत्सव चला। यह बात सं. 1842 की है। वहाँ से नारणजी सोढा थराद के पास स्थित खानपुर आए। खानपुर के सोढा आज भी गोडीजी के पाट की पूजा करते हैं, और शराब और मांस का सेवन नहीं करते।

कुछ समय बीता और नारणजी सोढा ने पारकर जाने का विचार किया। किन्तु प्रतिमा जी का क्या करें? पारकर मैं मोरो का अधिपत्य था, इसलिए वह वहाँ टिक पाएंगे या नहीं, यह प्रश्न था। इस असमंजस में उन्हें वाव के सिंहासन पर बैठे भवान-सिंह मानसिंह की याद आई। उनके पास आकर वह बोले कि, आपके अधिकारी जैन हैं, उन्हें मैं गोडीजी की प्रतिमा देना चाहता हूँ, ताकि सेवा पूजा चालू रहे। पारकर में यदि सब कुछ सही हुआ, तो मैं वापस आकर मूर्ति ले लूँगा। इस प्रकार सं. 1843 में यह मूर्ति वाव के जैनों के पास आई। सोढा ने उन्हें बताया गया कि, कुछ समय इस मूर्ति को छुपा कर रखना क्योंकि यदि सोढा के दुश्मन मीरो ने मूर्ति देख ली, तो वह उन पर हमला करेंगे और सोडा को भी परेशान करेंगे।

वाव गाँव से पश्चिम दिशा में गोरजी के उपाश्रय में मूर्ति रखी गई, और बाद में नया जिनालय बनाकर विधिपूर्वक प्रतिष्ठा करवाई गई।

वर्तमान में गोडीजी भगवान की प्रतिमा गोरजी के उपाश्रय के निकट वाले मन्दिर से उठाकर गाँव के बीच नए बने हुए जिनमन्दिर में मूलनायक के रूप में प्रतिष्ठित है। गोडीजी भगवान के यक्ष के नाम से पहचाने जाने वाली पार्श्वयक्ष की प्रतिमा भी गोडी-जी भगवान के जिनालय में ही विराजित है।

'नमो तित्थस्स'

पूज्य मुनिराज श्री तीर्थबोधि विजयजी म.सा.

चलो, आज भगवान बनने का अंतिम कदम भी भर लेते हैं। जिसका नाम है - **तीर्थ पद।**

दो चीजें सबसे महत्त्वपूर्ण होती हैं, एक जो सबसे पहली हो, और दूसरी जो सबसे अंतिम हो।

दो बातें सबसे महत्त्वपूर्ण होती हैं, एक जो सबसे पहले कही गई हो, और दूसरी जो सबसे अंत में कही जाए।

खाने में दो चीजें हमेशा याद रहती है, एक जो सबसे पहले खाई हो, और दूसरी जो सबसे अंत में खाई हो। डकार आती है, तो जो चीज सबसे अंत में खाई हो, उसका 'स्वाद' भी आ जाता है।

जब नवपद की ओली करते हैं, तो पहला पद है अरिहंत, और अंतिम पद है, तप। कितना महत्त्व पूर्ण संदेश है। तप से अरिहंत बन सकते हैं। प्रभु महावीर स्वामी ने अपने तीसरे पूर्व भव में 11,80,645 मासक्षमण किए थे, उसकी बदौलत तीर्थंकर नामकर्म बांधा और वे 'महात्मा' और 'परमात्मा' बने।

नवतत्त्व के भीतर सबसे प्रथम तत्त्व है जीव, और अंतिम तत्त्व है मोक्ष। 'जीव' को आखिर क्या चाहिए - 'मोक्ष'। क्यों साधु भगवंत कष्टमय संयम जीवन जीते हैं? क्यों कठोर तप की तपस्या करते हैं? क्यों ध्यानी एकान्त में बैठकर महीनों तक

ध्यान करते हैं? क्यों साधक दुनिया की सुख सामग्री से मुंह मोड़े हुए रहते हैं?

इस सभी सवालों का एक ही जवाब है, **क्योंकि उन्हें 'मोक्ष' चाहिए।**

बीस स्थानक की जब बात आती है, **तो प्रथम पद है - अरिहंत और अंतिम पद है - तीर्थ।** तीर्थ की स्थापना करने के कारण ही तो अरिहंत, तीर्थंकर कहलाते हैं। तो सबसे प्रथम पद था तीर्थंकर का, और अंतिम पद - उन्होंने जिस तीर्थ की स्थापना की उसका।

तीर्थ का अर्थ क्या है? जब यह प्रश्न भगवती सूत्र में प्रभु से पूछा गया, तब प्रभु का उत्तर था - तीर्थ यानी प्रथम गणधर द्वारा रचित **"द्वादशांगी श्रुत या चतुर्विध श्रीसंघ।"**

आज हमारे पास प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी जी तो मौजूद नहीं है। ऐसे में दो ही तीर्थ हैं जिनकी हम तीर्थ पद में आराधना कर सकते हैं, वे हैं - द्वादशांगी श्रुत और श्रीसंघ।

इन दोनों में से भी द्वादशांगी श्रुत की पठन-पाठन

की अनुज्ञा तो मात्र श्रमण- श्रमणियों को ही है, उसके अर्थ का श्रवण सिर्फ श्रावक-श्राविका करते हैं ऐसा नियम है।

अब अंत में रहा सिर्फ एक ही तीर्थ - **चतुर्विध श्रीसंघ।**

चतुर्विध संघ में श्रावक-श्राविका भी आते हैं, और साधु साध्वी जी भी समा जाते हैं। एक दिन के पर्याय वाले मुनि एवं आठ साल की उम्र वाले छोटे से श्रमण भी संघ है। क्या ये सभी पूज्य हैं? हाँ। और सिर्फ मुझे ही नहीं, यह तीर्थ, यानी चतुर्विध श्रीसंघ तो स्वयं तीर्थंकर अरिहंत प्रभु के लिए भी नमस्करणीय व वंदनीय है। समवसरण में आते ही तीर्थंकर प्रभु चैत्य वृक्ष को प्रदक्षिणा देते हैं, और कहते हैं, **'नमो तित्थस्स'** - तीर्थ को नमन हो।

यदि श्री संघ वंदनीय है, तो हम संघ के किसी भी सदस्य के प्रति श्रीसंघ कैसे रख सकते हैं? हम संघ के अंग पर मन-मुटाव या वैर-कलह कैसे कर सकते हैं? हम संघ के सदस्य की निंदा या उनके प्रतिकूल वर्तन कैसे कर सकते हैं?

हम जब मंदिर में जाते हैं, दर्शन पूजा करते हैं, तब हमें ध्यान रखना चाहिए कि, इस तरीके से ना खड़े रहें कि किसी अन्य दर्शनार्थी को दर्शन में अंतराय हो। कोई भक्त अपनी भक्ति बताता हुआ इतनी जोर की आवाज से स्तवन और गीत ललकारता है कि, मानों भगवान को सिर्फ उसकी ही बात सुननी चाहिए, और किसी की नहीं। यह 'नॉइज़ पॉल्यूशन' सिर्फ चौराहे पर ही नहीं, मंदिर में भी घुसपैठ कर देती है। हमारी भक्ति के भाव से औरों की भक्ति के भाव को 'डिस्टर्ब' करने का हमारा अधिकार नहीं है। भक्ति अगर इतनी ही उमड़ रही हो, तो अपने घर में ही गृह-जिनालय बनाओ और उसमें जो करना हो, जितना करना हो, करो। कईं

परमात्मा बनने के 20 Steps

बार होता ऐसा है कि हमें भगवान को सुनाने में नहीं, औरों को दिखाने में ज्यादा रस होता है। भगवान तो मन में बोला हुआ भी सुन लेते हैं।

जब संघ इकट्ठा होता है तब इसलिए इस बात का ख्याल रखा जाए कि, मेरे व्यवहार, वाणी और विचारों से संघ का कोई भी सदस्य हर्ट न हो।

घर के किसी सदस्य ने कोई गलती की हो, तो हम उस बात को घर के बाहर तक भी नहीं जाने देते, और संघ के किसी सदस्य से कोई गलती हो गई, तो उसको सार्वजनिक गॉसिप का इश्यू बना देते हैं। क्या हमें संघ के सदस्य की गलती को देखने का या उसका प्रचार करने का ठेका किसी ने दे रखा है? क्यों व्यर्थ ही भगवान बनने से दूर जा रहे हैं? तीर्थ से दूर मत रहो, पर तीर्थ की आशातना से दूर रहो, और तीर्थंकर बन जाओ - यही तीर्थबोधि की अंतिम सलाह। फिर मिलेंगे।

मारी अरज सुनो रे...

मारी अरज सुनो रे ओ पच्चीसवें भगवान!
मैं तो सेवक हूँ थारे दरबार रा सुनो रे साईं!
मैं तो सेवक हूँ थारे दरबार रा...

वीर प्रभु ने थापीयो है और गणधर ने फैलायो है;
सूरिदेवों ने आपरी बढ़ाई शान जी... मैं तो...1॥

मैं थाने ना जानूं मोटे ज्ञानी तुझको जाने रे;
थे हो मारी नाचीज की तो आन बान जी... मैं तो...2॥

मैं थारो सिपाही तू है मारो सूबेदार जी;
मारे तन मन धन तुझ पे करूं कुरबान जी... मैं तो...3॥

खम्मा घणी रे थोने जिनशासन रा देव जी;
थारा छोटा भगत रे रखजो दल में याद जी... मैं तो...4॥

एक बार थे प्रेम नजर सुं जो मोने निहाळोजी;
मारे आंगन सुं बरसे लाल लाल गुलाल जी... मैं तो...5॥

अतिथि देवो भव

पूज्य मुनिराज श्री कृपाशेखर विजयजी म.सा.

छगनभाई के घर के आंगन में मधुमक्खी का छत्ता लगा हुआ देखकर मगनभाई ने कहा, 'भाई! आपके तो आंगन में ही मधुमक्खी का छत्ता है, तो आपको तो मुफ्त में शहद मिल जाता होगा ना?'

यह सुनकर छगनभाई ने जवाब दिया कि, 'नहीं, शहद तो नहीं मिलता, पर भिखारियों और मेहमानों से अवश्य राहत मिलती है।'

जिसके घर के द्वार पर मीठा मधुर शहद लगा हुआ है, उसका दिल कितना कड़वा? ऐसी भावना में मानवता बची ही कहाँ है? जो दूसरों का तिरस्कार करते रहते हैं, वे स्वयं भी तिरस्कृत हुए बिना नहीं रहते।

उत्तम दिल के मनुष्य तो दान, पूज्य और अतिथि के सत्कार के अवसर की राह तककर ही बैठे होते हैं। आकस्मिक आने वाले अतिथि के कदमों से कृत्य-कृत्य बन जाते हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में अतिथि सत्कार की भावना का बड़ा ही महत्व है। इसीलिए कहा गया है, "अतिथि देवो भव" अतिथि भगवान का रूप होते हैं।

गुजराती कहावत भी है कि,

"चढ़ता दिननुं पारखुं, नित आवे मेहमान;
उतरता दिननुं पारखु, घर ना आवे श्वान"

यदि हमारे घर रोज मेहमान आए, तो समझ लेना - चढ़ती (उन्नति के) सौभाग्य के दिन चल रहे हैं। और यदि हमारे घर पर श्वान (कुत्ता) भी नहीं आता हो, तो समझ लेना कि, हमारी पड़ती (दुर्भाग्य) के दिन चल रहे हैं।

जैनशासन को नयसार, धन सार्थवाह के किए गए अतिथि सत्कार से क्रमशः श्रमण भगवान महावीर, और प्रभु श्री ऋषभदेव की प्राप्ति हुई है। तो संगम और सुरुचि के किए गए अतिथि सत्कार से शालिभद्र और धन्नाजी की जोड़ी प्राप्त हुई है।

आज अगर आपके घर पर अतिथि, मेहमान, या साधु-संत पधारते हैं, तो क्या आपके दिल में आनंद होता है?

आज तो पूरा विपरीत तंत्र चल रहा है। आपके घर ऐसे टॉवर बन गए हैं, कि जिस में कोई कुत्ता, बिल्ली, गाय को तो Entry ही नहीं है, गरीब और भिखारियों को भी Entry ही नहीं है। यहाँ तक कि पूज्य साधु-साध्वीजी भगवंत को भी Direct Entry नहीं है। आपने ऐसी Lifestyle को अपना लिया है जिससे जीवदया, अनुकंपा, साधर्मिक भक्ति या सुपात्रदान रूप अतिथि सत्कार आपके लिए बहुत दुर्लभ हो गए हैं। यह दर्शाता है कि आपके परम दुर्भाग्य के दिन चल रहे हैं।

बाकी, श्रमण भगवान महावीरस्वामी के समय में पुणिया नामक श्रावक था। वह अत्यंत अल्प परिग्रही और दिन-रात सामायिकादि धर्मक्रिया में रत रहता था। उसकी पत्नी भी ऐसी ही भावनाशील थी। दोनों के सामायिक की तो भगवान श्री महावीरदेव ने भी प्रशंसा की थी। उनका अतिथि सत्कार भी उतना ही जबरदस्त था। एक दिन पुणिया श्रावक उपवास करके मेहमान को भोजन कराता था, और दूसरे दिन उसकी पत्नी उपवास करके अतिथि को खाना खिलाती थी। अतिथि सत्कार की भावना तो ऐसी होनी चाहिए कि देवों को भी उसका आस्वाद लेने का मन हो जाए।

पर शहरी जीवन दिन-प्रतिदिन संस्कृति से दूर होता जा रहा है। रविशंकर महाराज ने बताया है कि:

"इकट्ठे मिलकर खाना गांव की संस्कृति है, और इकट्ठा करके खाना शहर की संस्कृति है"

"जहां कुत्ता मर जाए तो भी पता चल जाए वह गाँव, और जहाँ इंसान मर जाए फिर भी पता नहीं चले वह शहर।"

कौआ भी भोजन मिलने पर काँव-काँव करके सभी कौओं को इकट्ठा करके खाता है। क्या आज का मानव कौए से भी गया-गुजरा हो गया!!!

चलो, हम संकल्प करते हैं कि : अब इकट्ठा करके नहीं, इकट्ठे मिलकर खायेंगे।
अपना भोजन किसी साधु, संत, साधार्मिक या
अतिथि को देकर उसे अमृत
भोजन बना देंगे।

Temper : A Terror – 18

पूज्य मुनिराज श्री शीलगुण विजयजी म.सा.

इंद्रसभा जैसी पारिवारिक सभा उस खेत में बैठी हुई थी। क्षेमंकर, चंद्रसेन के साथ व्यापार की बातें कर रहा था। सत्यश्री, लक्ष्मी को एक नया शिल्प सिखा रही थी।

"आज मुझे बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है..." क्षेमंकर ने चंद्रसेन कर्मचारी की ओर देखा। उसे ऐसी आशा थी कि, चंद्रसेन आज छुट्टी का दिन होने पर भी कार्य कर लेगा।

"क्या काम है सेठजी?" चंद्रसेन ने सहजता से पूछा।

"तुझे आज निकट के गाँव में जाना पड़ेगा। वहाँ मेरा मित्र..." चंद्रसेन के मुख पर कार्य नहीं करने के भाव उमड़ते हुए देखकर क्षेमंकर बोलते-बोलते रुक गया।

"क्या हुआ? मुँह क्यों बिगाड़ रहा है?" चंद्रसेन के बिगड़ते भावों ने क्षेमंकर से दूसरा प्रश्न करवाया।

"सेठजी! मैं आज तो कदापि नहीं जाऊँगा। मुझे आज मेरे सभी परिजनों से मिलने गाँव जाना है। आज नहीं होगा... आज छुट्टी है।" चंद्रसेन की आँखें अपने मालिक क्षेमंकर की ओर गई। उसकी आँखों में पिछले कई समय से दबे हुए क्रोध का ज्वालामुखी उठता लगा।

"अबे ओए... तू मुझे मना कर रहा है? तेरी औकात क्या है?" थूक के साथ गंदे से गंदे शब्द क्षेमंकर के मुँह से फूटने लगे। सत्यश्री और लक्ष्मी का चेहरा चिंताग्रस्त हो गया। बहुत समय के बाद क्षेमंकर के चेहरे पर ऐसा क्रोध दोनों ने देखा था।

"जा... तुझे जहाँ जाना हो वहाँ जा... पर याद रखना, जब तू तेरे स्वजनों को मिलने जाएगा, तब एक भी स्वजन तुझे नहीं मिलने वाले।" क्षेमंकर ने चंद्रसेन की ओर देखा।

चंद्रसेन अपने मालिक के कांटे जैसे शब्द सुनकर क्रोध में आ गया। वह कुछ बोलने जा ही रहा था, कि उसे गुस्से को प्रशांत करने वाली ध्वनि सुनाई दी।

'धर्मलाभ!'

सभी की दृष्टि द्वार की ओर गई। वहाँ उन्होंने महामुनिवरों को गोचरी के लिए आते हुए देखा। "पधारो... पधारो..." करते हुए अपने क्रोध को अनदेखा करके क्षेमंकर मुनिवरो की ओर गया।

क्षेमंकर और चंद्रसेन दोनों मुनिवरो को रसोईखंड में ले गए।

"सत्यश्री! ओ अर्धांगिनी! देखो महामुनिवर पधारे हैं। उन्हें अचित्त, यानी बिना जीव की वस्तुएँ वोहराना। उन्हें हमारे लिए बनाई गई चीजें वोहराना। उन्हें निर्दोष वस्तुएँ वोहराना।" यह बोलते हुए क्षेमंकर के मुख पर अवर्णनीय भाव छलक उठे। सत्यश्री के चेहरे पर भी अकल्पनीय आनंद छा गया।

चंद्रसेन पीछे खड़ा इन सारी चीजों को एकटक दृष्टि से देख रहा था। उसके मन में भी अव्यक्त भाव उमड़ने लगे। जो बोल-चाल हुई थी, वह उसे भूल गया।

'ये दोनों धन्यातिधन्य हैं। बहुत पुण्योदय होता है, तब जाकर मानवभव मिलता है। उसमें भी विशेष पुण्य जाग जाए तो जैनकुल मिलता है। अरे! जैनकुल मिलने के बाद भी साधु-साध्वीजी का संयोग तो सौ में से एक को मिलता है। और उसमें भी उनको निर्दोष भिक्षा भक्तिपूर्वक वोहराने का लाभ तो किसी को भाग्य से ही मिलता है। सच में मेरे सेठ-सेठानी जी बहुत विशिष्ट पुण्यवान हैं।

चंद्रसेन अपने भावों में आगे बढ़ता ही जा रहा था, कि एक जोरदार कड़ाका हुआ। अपने शरीर में जैसे कोई अगणित आग की सलाखें घुसा रहा हो, ऐसा चंद्रसेन को लगा। उसने अपने सामने खड़े सेठ-सेठानी जी की ओर देखा, उनकी भी यही दशा थी। क्षेमंकर शेठ तो नीचे गिर पड़े थे। वे मुनिवर उनके निकट आकर उनको कुछ सुनाने का प्रयास कर रहे थे। सत्यश्री सेठानी भी तड़प रही थी।

चंद्रसेन को अपनी पीड़ा असह्य लगने लगी। उसकी चेतना धीरे-धीरे उसके शरीर से जाने लगी। उसका शरीर नीचे गिर पड़ा। एक अकथ्य वेदना के सरोवर में वह डूब गया।

परिसमाप्ति - 1

अमरदत्त को किसी सरोवर के किनारे बैठा हुआ हो, ऐसा अनुभव हो रहा था। उसकी आँखें खुल गई। सभी लोग उसके आसपास खड़े हुए दिखाई दिए।

"ये सभी लोग मुझे इस तरह क्यों देख रहे हैं?" अमरदत्त के शून्य मस्तिष्क में विचार की एक बिजली चमकी। अमरदत्त ने दूसरी तरफ देखा, तो रानी रत्नमंजरी भी भूमि पर बेसुध पड़ी हुई थी। उसकी चेतना अभी जागृत नहीं हुई थी।

राजा अपने स्थान पर बैठा। उसे अपनी चेतना के गुम हो जाने के पहले गुरु ने कहे हुए आख़री वाक्य याद आ गए। "अमरदत्त! तू ही वह क्षेमंकर है। राजन! यह तेरी रानी सत्यश्री है, और यह तेरा मित्र मित्रानंद, जो अभी रानी के गर्भ में है, वह तेरा वही नौकर चंद्रसेन है। क्रोध का फल बहुत बुरा होता है। तुम तीनों के जीवन में जो कुछ भी अकल्पनीय घटनाएँ घटी हैं, वे तुम्हारे क्रोध के कारण से घटी है।

तुझे स्वजनों का वियोग तेरे वचनों के कारण हुआ। मित्रानंद को फांसी पर अपने वचनों के कारण लटकना पड़ा। रानी को डायन का कलंक सत्यश्री के भव में कहे गए वचनों के कारण लग गया।

और वह व्यंतर, जिसने वैर का स्मरण करके शव के मुख में जाकर भविष्यवाणी की थी, वह तो धान्य चुराने वाले 'चोर' के रूप में चंद्रसेन द्वारा कहा गया यात्री है; और कोई नहीं। किए हुए कर्म किसी को भी नहीं छोड़ते हैं। बिजली गिरने से तुम तीनों की मृत्यु हो गई। शुभ भाव के कारण तुम्हें मनुष्यभव मिला, पर क्रोध के कारण तुम्हें ..."

अमरदत्त की आँखें पश्चात्ताप और वियोग के कारण गीली हो गई। कर्मों की क्रूरता अमरदत्त के सामने डायन की तरह नाचने लगी। रानी की चेतना भी सजीव होती हुई अमरदत्त को दिखाई दी। वह उसकी तरफ मुड़ा।

"रानी! रत्नमंजरी! उठो...!!" रत्नमंजरी ने आँखें खोली। राजा को उसकी आँखों में एक तरह की शून्यता मात्र ही दिखाई दी।

"तुम्हें क्या हो रहा है?" राजा अमरदत्त ने रानी से पूछा।

"पिछले जन्म का सब कुछ अभी आँखों के सामने घटता हुआ दिखाई दे रहा है।" अपनी निर्बल आवाज में रानी ने कहा।

"मुझे भी वैसा ही हो रहा है।" राजा फिर से अपने ख्यालों में खो गया। भूतकाल उसके सामने फिर से एक बार सतेज हो गया।

परिसमाप्ति - 2

गंधर्व नगर की तरह समस्त नगरी आज विविध रंगों से सुशोभित थी। आज एक साथ दो बड़े महोत्सवों की जोर शोर से तैयारियाँ चल रहीं थीं।

दोनों महोत्सव बिल्कुल विरोधी थे, इसीलिए लोगों के मन के भाव भी कभी प्रसन्नता और कभी दुःख के विरोधाभास में झूल रहे थे।

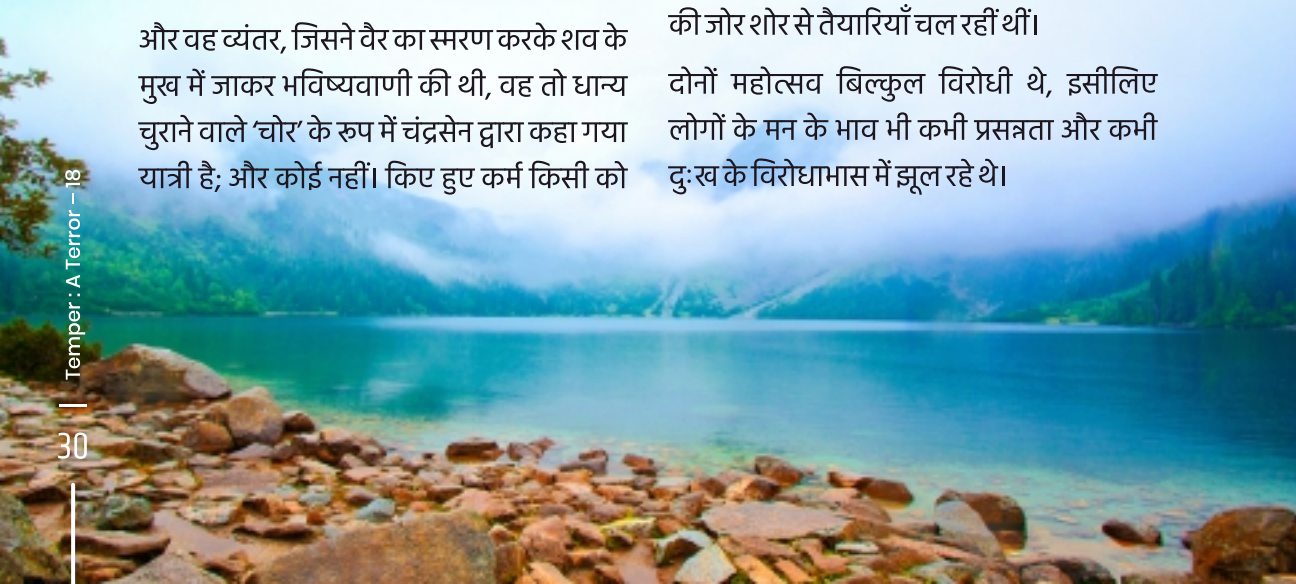

आज दूसरा महोत्सव राजेश्वर और राजा-रानी की दीक्षा का था। और आज के इस विरागमय दिन पर ही युवराज का राज्याभिषेक होने वाला था। एक तरफ राग का और दूसरी तरफ वैराग्य का वातावरण खड़ा हो रहा था।

अमरदत्त राजा अपने सिंहासन पर बैठे हुए अपने पुत्र और पूर्वभव के मित्र मित्रानंद के जीव को विविध कलशों से विविध जलों का अभिषेक कर रहे थे। उनके मुख पर भी दो प्रकार के भाव दिख रहे थे। मित्रानंद मित्र की लगभग सभी कुशलताएँ उसके नए अवतरण में भी कूट-कूट कर भरी हुई थीं। पर उसके साथ-साथ एक प्रकार की विराग-भावना भी नूतन राजपुत्र के मुख पर सहज ही थी।

"तो राजाधिराज! अब हम प्रयाण करें?" रत्नमंजरी महारानी ने आकर पुत्र को पूछा। मातृहृदया होने के कारण उसकी आँखों में से अश्रु झलक रहे थे।

माता को देखकर भावनावश नूतन राजा पुत्र की आँखें भी नम हो गईं।

"जी! आपका पंथ ही वास्तविक लेने जैसा है, और अति सुयोग्य गुरु जी आप दोनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। "शिवास्ते सन्तु पन्थानः..." इतना बोलते ही हुए तो पुत्र का गला भर आया। नूतन राजा पुत्र, अमरदत्त और रत्नमंजरी को दीक्षा दिलाने के लिए राजसिंहासन से दुःख के साथ खड़ा हो गया। वियोग पूर्व निश्चित था। यह वियोग गुरु का प्रसाद था।

परिसमाप्ति – 3

शिबिकाओं की पंक्तियों की भांति देवविमान धरती पर उतर रहे थे। देवों के मुख पर हर्षातिरेक दिखाई दे रहा था। कोई अपूर्व अवसर उनके जीवन में आया हो, ऐसा उनके हाव-भाव स्पष्ट बता रहे थे।

"किसका महोत्सव हैं?" एक देव ने अपनी देवी से पूछा।

"क्या आपको पता नहीं है? राजा अमरदत्त को पहचानते हैं आप?" देवी ने देव की ओर दृष्टि की।

"हाँ... हाँ... वही ना, जिनको क्रोध के कारण अपने स्वजनों का वियोग हुआ था। वही ना, जिन्होंने बाद में दीक्षा ली। फिर क्या...?" त्वरितता से देव बोल पड़ा।

"हाँ... वही... उनको और रानी रत्नमंजरी को केवल-ज्ञान उत्पन्न हुआ है।"

देव के चेहरे पर आश्चर्य छा गया।

"क्या बात करती हो?... सच में... पहले क्रोध... वियोग... और अब केवलज्ञान... धन्य है... कर्म सच में विचित्र हैं... एक ही भव में व्यक्ति को पटककर फिर ऊँचा उठाने की शक्ति भी उसी की है। नमो नमः कर्माय..." देवी के चेहरे पर भी उस बात का आश्चर्य झलक रहा था।

"बोलो क्रोधविजेता मुनिराज की जय...
बोलो साध्वीवर्या की जय..."

TEMPER • A TERROR

LEARNING
MAKES A MAN
PERFECT

VISIT US
www.faithbook.in
FaithbookOnline

- "Faithbook" नॉलेज बुक में साहित्यिक, धार्मिक एवं मानवीय सम्बन्धों को उजागर करने वाली कृतियों को स्थान दिया जाता है। ऐसी कृतियाँ आप भी भेज सकते हैं। चुनी हुई कृतियों को "Faithbook" नॉलेज बुक में स्थान दिया जाएगा।
- प्रकाशित लेख एवं विचारों से "Faithbook" के चयनकर्ता, प्रकाशक, निदेशक या सम्पादक सहमत हों, यह आवश्यक नहीं है।
- इस Faithbook नॉलेज बुक में वीतराग प्रभु की आज्ञा विरुद्ध का प्रकाशन हुआ हो तो अंतःकरण से त्रिविध त्रिविध मिच्छामि दुक्कडम्।

SAYYAM GRAPHICS
90820 78796 | 92704 56160